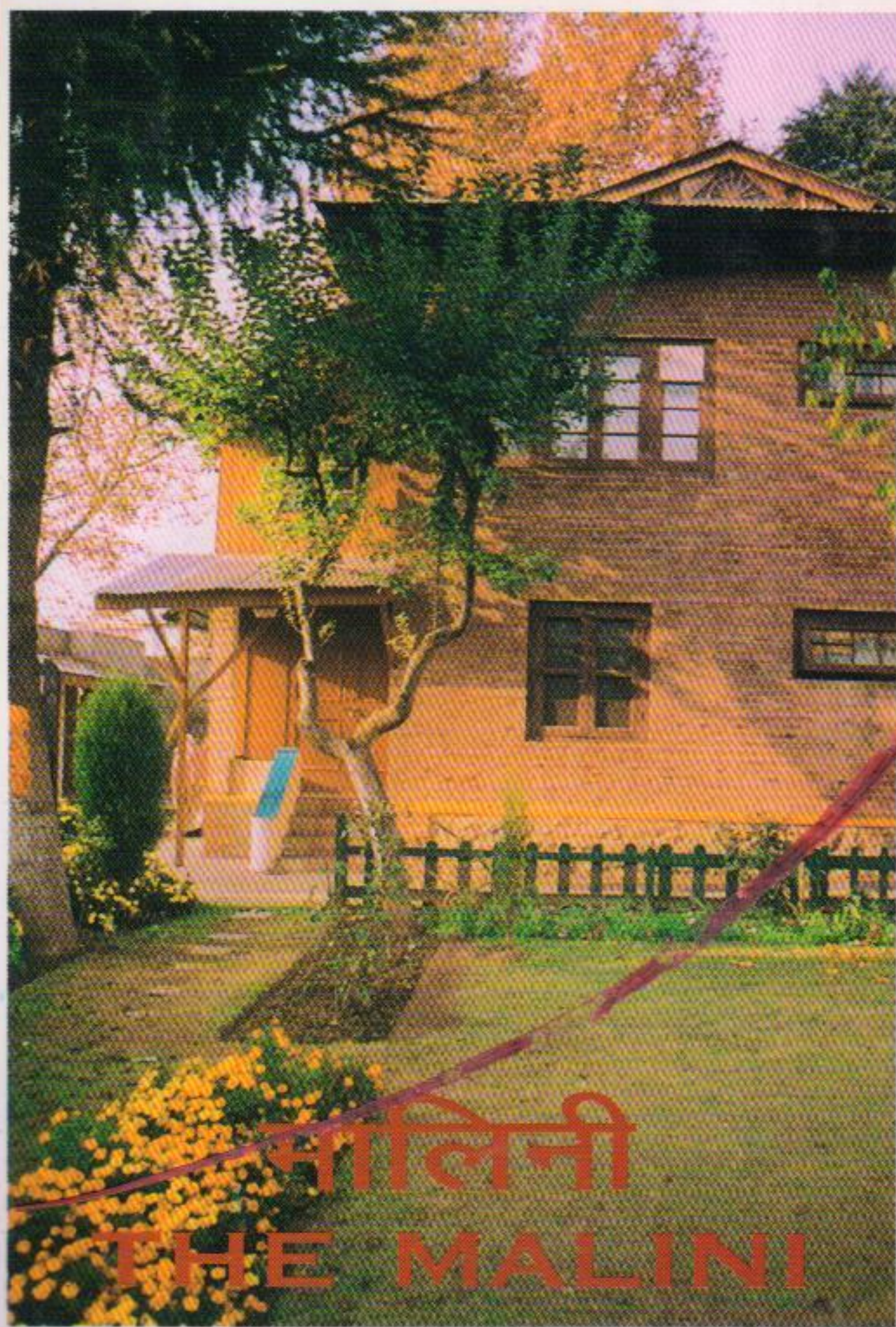


JULY, 1999

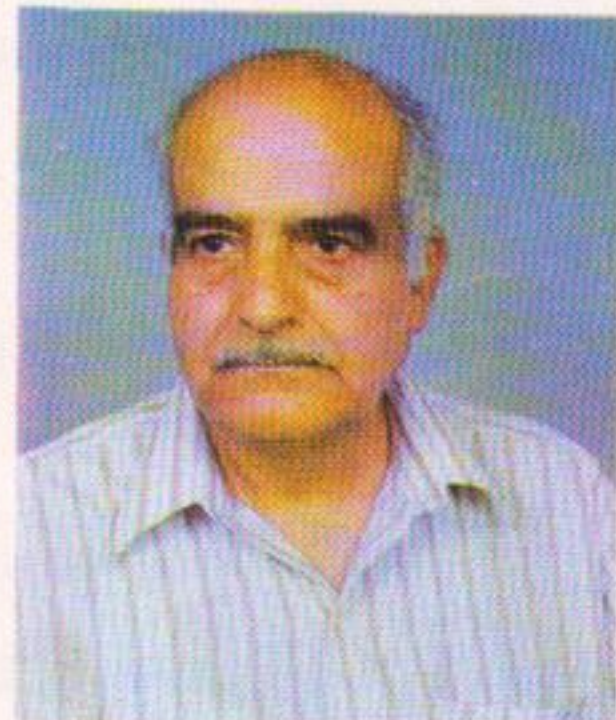


ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

परोपकाराय सतां विभूतयः

सात मई १९९९ तदनुसार ज्येष्ठ कृष्णपक्षषष्ठी शुक्रवार का दिन ईश्वराश्रमपरिवारके लिए चिरस्मरणीय रहेगा। सभी भक्तों को विदित है कि श्रीनगरस्थित ईश्वराश्रमके मुख्यभवन के अगल-बगल में एक विशाल भवन, दो दशक से भी कम समय से पूर्व स्वर्गीय श्री भगवानदासरैणा के सुपुत्रों श्रीइन्द्रकृष्णरैणा और श्रीशिबनकृष्णरैणाने बनवाया था। यह तिमंजिला विशालभवन सद्गुरु महाराज की देखरेख में लगभग एक साल में सारी आधुनिक सुविधाओंके समेत साकार हो उठा था। ईश्वराश्रमपरिवारके



दानवीर श्री इन्द्रकृष्ण रैणा

सभी सदस्यों ने कश्मीरकी वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ट्रस्ट के अधिकारियों से अनेक बार अनुरोध किया कि किसी-न-किसी प्रकार से यह तिमंजिलाभवन ट्रस्ट के स्वामित्व में आ जाये। श्रीरैणा इस भवन के स्वामी होने के साथ-साथ ट्रस्ट के सचिव का भी महनीयपद संभाले हुए हैं अतः उन्हें ट्रस्ट के अन्य अधिकारियों ने इस महान उपकार के लिए सविनय निवेदन किया जिस की स्वीकृति इन्होंने सहर्ष प्रदान की। पच्चीस लाख रुपयों की बड़ी धनराशि के लिए आंकी गई सम्पत्ति को श्री इन्द्रकृष्णरैणा ने आश्रम को केवल ग्यारह लाख में देने के लिए अपनी अनुमति दी। पर आज दक्षिणदिल्ली स्थित सरिता विहार के आर-५, डी. पाकेट में, नवाधिगत भूखण्ड पर समुपस्थित जनसमुदाय तथा ईश्वराश्रमपरिवार के समक्ष, उन्होंने, यह घोषणा करतल ध्वनियों की गड़गड़ाहट में की कि, “मैं ईश्वराश्रमट्रस्ट को श्रीनगरस्थित अपना यह तिमंजिलामकान, जिसे पाने के लिए मेरे गुरु भाईयों और बहिनों की प्रबल इच्छा थी, आज नियत की गई ग्यारहलाख की धनराशि को वसूल किये बिना ही, सद्गुरु महाराज के चरण कमलों पर न्योछावर करता हूँ। मुझे आशा है कि सद्गुरु महाराज के भक्त, साधक शिष्यगण व प्रेमीजन मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करके मेरा मान बढ़ायेंगे” ॥

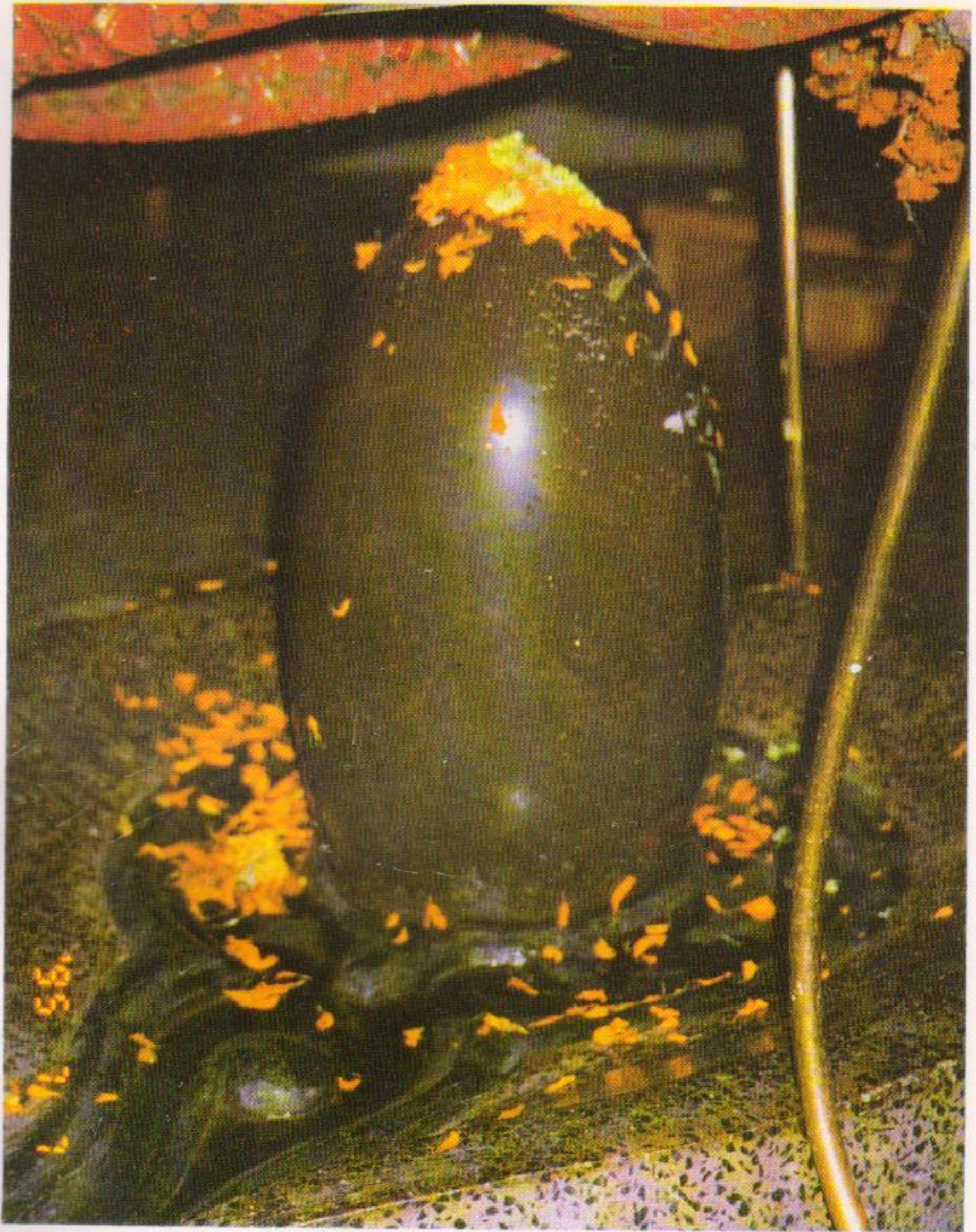
श्रीरैणापरिवार की इस घोषणा को सुनकर सभी भक्तजन आह्लादित हुए और साधुवाद देते हुए परस्पर कहने लगे कि इस कलिकाल में भी ऐसे महान कर्ण जैसे दानवीरों की कमी नहीं है। ऐसे ही दानवीर ब्रह्मसाक्षात्कार का फल अनायास प्राप्त करते हैं और अपने जन्म को सार्थक बनाते हैं। सद्गुरु महाराज इन्हें सदा सुखी व समृद्ध रखें और आगे भी ऐसे प्रशंसनीय कार्यों से ये अपने वंश की मर्यादा को बनाये रखने का गौरव प्राप्त करें।

जय गुरुदेव

७ मई शुक्रवार

सन् १९९९.

ईश्वर आश्रम परिवार



सद्गुरु महाराज के कर-कमलों द्वारा प्रतिष्ठित ईश्वराश्रम, निशात-श्रीनगर स्थित
अमृतेश्वर-भैरव मन्दिर का अमृतेश्वर लिंग



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

SRINAGAR / JAMMU / DELHI

JAI GURU DEV

Dear Guru Brother/Sister,

We would like to inform you that the Mahayajna on the occasion of the 8th Nirvana Jayanti of our Venerable Gurudeva Sri Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj will be celebrated on **Tuesday, 28th September, 1999.**

The Trust has made arrangements to celebrate this auspicious day simultaneously in Srinagar, Jammu, & Delhi for participation of all devotees & admirers on the occasion.

PROGRAMME

Delhi

Venue : Community Hall,
Near Plot No. R5-D-Block
Pocket G, Sarita Vihar, New Delhi.

Mahayajna : 6 a.m. to 5 p.m.

Prasad Vitaran : 5.30 pm

You are cordially invited to attend the function along with members of your family and friends to share with us the bounty of blessings of "MAHA MAHIMASHALI SADGURUMAHARAJ".

With blessings of Sadgurudeva,

Your sincerely

Sd/-

I.K.Raina

Secretary

Tel.: 6896266, 6943307



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 555755

Branch Office :

Ishwar Ashram Trust

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel. : 6943307

July, 1999

Price : Rs. 20.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

| | | |
|---|---|----|
| सम्पादक की लेखनी से | | 4 |
| 1. Śiva Sūtras | <i>Svāmī Lakṣmaṇa Joo</i> <i>Mahārāja</i> | 6 |
| 2. Temple Verses | <i>Svāmī Lakṣmaṇa Joo</i> <i>Mahārāja</i> | 12 |
| 3. Think it Over | <i>Gems from</i> <i>Aṣṭāvakra Gītā Sāra</i> | 16 |
| 4. Mind | <i>Yoga Vasishtha</i> | 18 |
| 5. विज्ञान भैरव-समीक्षात्मक अध्ययन | शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज | 19 |
| 6. काश्मीर शैवदर्शन पर कविराज जी के विचार | डा० नवजीवन रस्तोगी | 26 |
| 7. शैवदर्शन के वातायन से | प्रो० नीलकण्ठ गुट्टू | 35 |
| 8. Letter From Minister For Communications | | 38 |
| 9. From Ashram Desk | <i>Administrative Office</i> | 39 |
| परोपकाराय सतां विभूतयः | ईश्वराश्रम परिवार | |

संपादक की लेखनी से....

मालिनी का यह सतरहवां अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें इस बात का गर्व हो रहा है कि मालिनी की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। मालिनी की विषय सामग्री सर्वसाधारण की समझ की वस्तु न होने पर भी, पाठकों की विवशताभरी प्रतीक्षा इस बात की साक्षी है कि मालिनी का शशांक उदित होते ही पाठकों का हृदय-सागर कैसे उद्वेलित हो उठता है। मालिनी में छिड़का गया सद्गुरु-वचनामृत, शीतल-सुधा-बिन्दुओं से अन्तर्दाह का शमन करके हृदय को सुशान्त बनाता है। वास्तव में यह वचनामृत ज्ञान की, ऐश्वर्य की और सिद्धियों की रसमयी फुहार है जो हमारे त्रिविध ताप को दूर करने के लिए सक्षम है। लोक कल्याण की उच्छल ज्ञान गंगा को प्रवाहित कर मालिनी ने झुलसन भरे समाज के प्राणों को आह्लादित और सुशीतल बनाने का बीड़ा उठाया है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के गौरव सद्गुरुदेव हमारे प्राणाधार हैं, आराध्य देव हैं, अमृतत्व की भूमि हैं, अद्वितीय विभूति हैं, ज्ञान का विस्तार हैं, जीवन की सर्वोच्चता हैं, प्रेमावतार हैं, शिवत्व रूप हैं, अध्यात्म की उच्चतम अवस्था हैं और चेतना का सतत प्रवाह हैं। हमारा यह अन्यतम प्रण होना चाहिए कि ऐसे सद्गुरु के मार्गदर्शन में रहकर हम सदा गतिशील रहें, आत्मोत्थान की ओर सदा अग्रसर रहें और उनकी कृपा दृष्टि का सदा पात्र बनें। क्योंकि सही रास्ते पर चलाना, रास्ते का महत्व एवं मार्ग प्रशस्त करने वाले केवल गुरु ही हैं और गुरु का सम्बन्ध तो युगों-युगों का है। यह सम्बन्ध शरीर का न होकर आत्मा का सम्बन्ध है। यह पितापुत्र के सम्बन्ध से भी ऊँचा है। अन्धकार से प्रकाश की ओर लेकर अपने शिष्य को लक्ष्यप्राप्ति कराने में गुरु ही सहायक होते हैं। आनन्दरस से सराबोर कर शिष्य को स्वरूप प्रथन लाभ के पात्र बनाते हैं। विना साधना, विना मंत्र जाप के साधक के जीवन में अद्वितीयता लाकर उसके जीवन को सार्थक बनाते हैं। सद्गुरु ब्रह्मा की तरह शिष्य का नवीन निर्माण करता है, उसे एक नवीन व्यक्तित्व देता है, विष्णु की भांति संपूर्ण रूप से पालता है, उसकी हर इच्छा, हर आकांक्षा पूर्ण करता है। वास्तव में गुरु तो ज्ञान का अनवच्छिन्न प्रवाह है, कहीं भी किसी भी परिस्थिति से अवरुद्ध होने वाली शक्ति नहीं हैं। वह तो भागीरथी की तरह पावन और पवित्र है। करुणावश सामान्य व्यक्ति के रूप में शिष्यों के बीच आकर उन्हें आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर करते हैं। शास्त्रों में कहा है कि-

“जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।”

अर्थात् हर व्यक्ति जन्म से शूद्र - उचित अनुचित का ज्ञान न रखने वाला होता है और केवल गुरु द्वारा दीक्षित होने पर ही वह द्विज - परम सत्य का ज्ञाता बनता है। आइये,

हम सब इस परम सत्य के भागीदार बनें।

सद्गुरु महाराज की गत अप्रैल की जन्म जयन्ती पर दिल्ली स्थित ईश्वर - आश्रम - परिवार ने पहली बार अपनी खरीदी हुई भूमि पर सरिता विहार दक्षिण दिल्ली में जन्म जयन्ती का उत्सव धूमधाम से मनाया। हजारों श्रद्धालुओं ने इस उत्सव में सम्मिलित होकर श्रद्धासुमन सद्गुरु चरणों में समर्पित किये और अपने जीवन को सार्थक बनाया।

सात मई शुक्रवार सन् १९९९ का दिन ईश्वर आश्रम - परिवार तथा सद्गुरु महाराज के भक्तों व साधकों के लिए चिरस्मरणीय रहेगा। इसी दिन श्री रामकृष्ण मिशन दिल्ली शाखा के सचिव महामहिम स्वामी गोकुलानन्द जी महाराज ने श्री अमृतेश्वर-भैरव मन्दिर का शिलान्यास अपने कर-कमलों से मन्त्रों की गूंज और सद्गुरु महाराज द्वारा सम्पादित अमृतेश्वर - भैरव स्तुति के उद्घोष के साथ किया। अवशिष्ट शिलान्यासार्चन ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के प्रधान अधिकारियों के तत्त्वावधान में सम्पन्न होने के पश्चात् प्रसाद वितरण आरम्भ हुआ। अमृतस्वरूप प्रसाद को पाकर सभी श्रद्धालुजन कृत कृत्य हुए।

मन्दिर तथा ईश्वर आश्रम भवन का निर्माण कार्य प्रतिकूल मौसम की परिस्थितियों के कारण आरम्भ नहीं हो सका। आशा है कि सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती के पश्चात् निर्माण कार्य का श्रीगणेश अवश्य होगा। आप सभी सद्गुरु भक्त इस निर्माण कार्य में स्वयं सम्मिलित होकर अपने जीवन को धन्य बनायेंगे ऐसी हमारी आशा है।

सभी दानवीरों से विनम्र प्रार्थना है कि वे इस निर्माण कार्य में पूर्ण आर्थिक सहयोग देकर सद्गुरु स्नेह ज्योति को अक्षुण्ण जलाये रखें। जिन उदार हृदय वाले भक्तों ने सद्गुरु जन्म जयन्ती पर तथा उससे पूर्व भी यथोचित आर्थिक अनुदान इस निर्माण कार्य के लिए अर्पण किया ईश्वर आश्रम ट्रस्ट उन सभी दानियों का आभारी है। आशा है कि वे अपनी दानवीरता का समय-समय पर पूर्ववत् परिचय देकर कृतार्थ करेंगे। हम पुनः यह याद दिला दें कि ईश्वर आश्रम ट्रस्ट को दिया हुआ यह मुक्त हस्त आर्थिक अनुदान आयकर सीमा ८०- जी - १९६१ अनुच्छेद के अन्तर्गत आयकर से मुक्त समझा जायेगा।

ईश्वराश्रम परिवार को गुरुपूर्णिमा की बधाइयां ।

जुलाई, सन्- १९९९

जय गुरुदेव

प्रो० मखनलाल कुकिलू

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

IX

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

(Continued from last issue)

किमस्य महायोगिनः काश्चित् तत्त्वाधिरोह प्रत्यासन्ना भूमिकाः सन्ति ?
याभिस्तत्त्वोर्ध्ववर्तिनी भूमिर्लक्ष्यते। सन्ति इत्याह-

किं सन्ति ?-are there, अस्य महायोगिनः - of that great yogi, काश्चित्- certain,
तत्त्वोर्ध्ववर्तिनी- with his ascent to reality, प्रत्यासन्ना- closely connected,
भूमिकाः - stages, याभिः -by which, लक्ष्यते- we can guess that he is established
in God-consciousness, सन्ति- there are, इत्याह- says the 12th sūtra-

विस्मयो योगभूमिकाः ॥ १२ ॥

vismayo yoga bhūmikāḥ.

The yogic powers here (in this state of being) comprise indescribable astonishment (wonder).

Are there certain stages, of that great yogi, closely connected with his ascent to reality, by which we can guess that he is established in God consciousness ? There are, says the 12th sūtra that the yogic powers, here in the state of being, comprise indescribable astonishment (wonder).

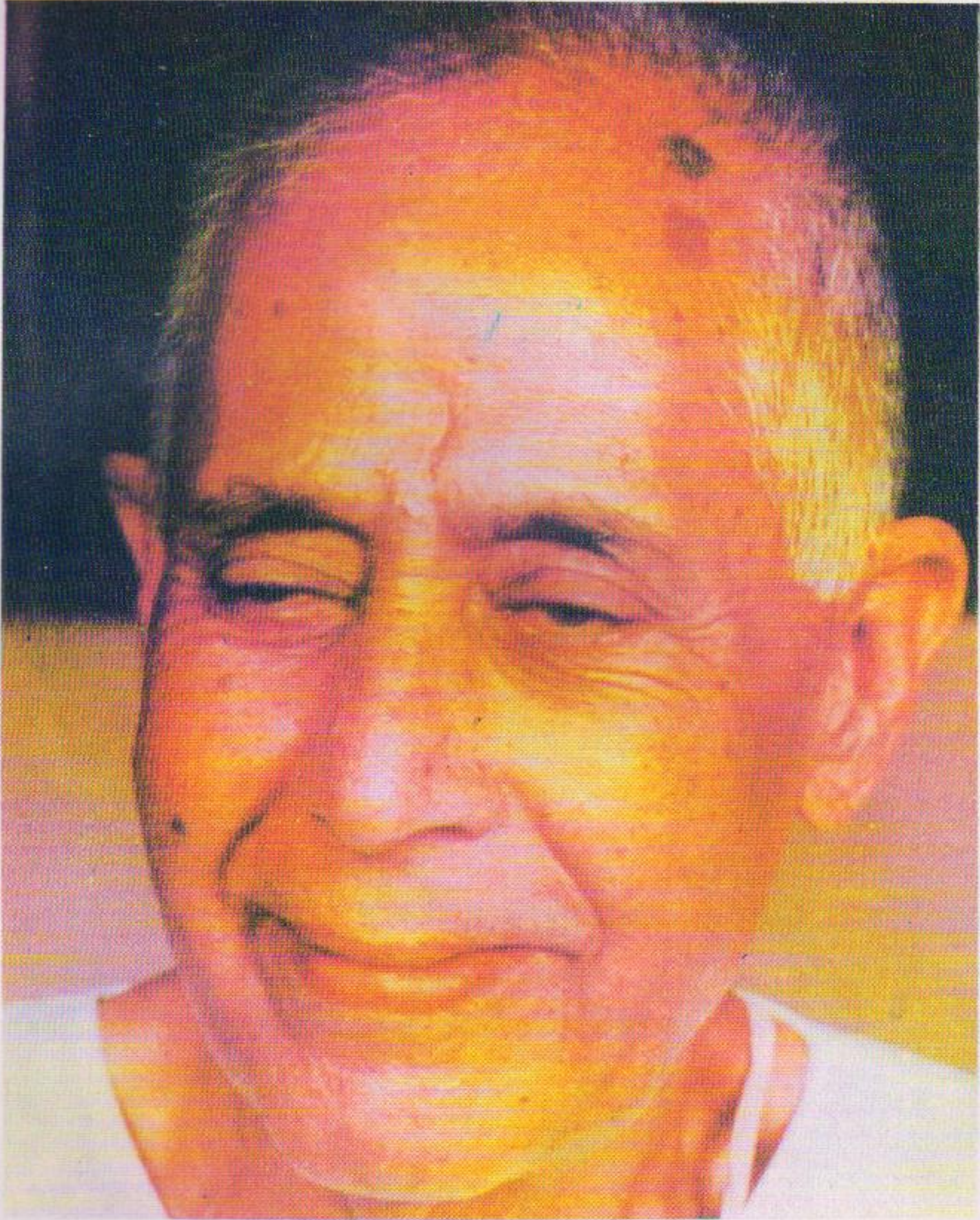
यथा सातिशयवस्तुदर्शने कस्यचित् विस्मयो भवति तथा अस्य महायोगिनो नित्यं तत्
तत् वेद्यावभासामर्शाभोगेषु निःसामान्यातिशय नव नव चमत्कार चित्धन स्वात्मावेशवशात्
स्मेर स्मेर स्तिमित विकसित समस्त करणचक्रस्य यो विस्मयोऽनवच्छिन्नानन्दे स्वात्मनि
अपरितृप्तत्वेन मुहुर्मुहुराश्चर्यायमाणताः, ता एव योगस्य - परतत्त्वैक्यस्य संबन्धिन्यो, भूमिकाः
- तदध्यारोह विश्रान्ति सूचिकाः परिमिता भूमयो, न तु कन्द बिन्द्वाद्यनुभव वृत्तयः। तदुक्तं
श्री कुलयुक्तौ-

आत्मा चैवात्मना ज्ञातो यदा भवति साधकैः।

तदा विस्मयमात्मा वै आत्मन्येव प्रपश्यति॥

इति। एतच्च

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस

9-5-1907

महासमाधिदिवस

27-9-1991

तमधिष्ठातृभावेन स्वभावमवलोकयन्।

स्मयमान इवास्ते यस्तस्येयं कुसृतिः कुतः॥

इति कारिकाया संगृहीतम्॥ १२ ॥

यथा- just, सातिशयवस्तुदर्शने- on seeing some wonderful object, कस्यचित् विस्मयो भवति- one gets astonished, तथा- in the same way, अस्य महायोगिनः- this great yogi, नित्यं- always (gets astonished), तत् तत् वेद्यावभासामर्शाभोगेषु (वेद्य+अवभास+आमर्श+आभोगेषु)- on seeing this objective world of senses or an expansion of his complete complex of senses, (as they) come fully under the influence of inner-self, (which is) निःसामान्य- unique, अतिशय- intense, नवनव- always fresh, चमत्कार- uncommon to all, चित्धन- mass of consciousness, स्वात्मावेशवशात्- by entering, (his organs) are स्मेर स्मेर- filled with gleaming joy, स्तिमित- one pointed, विकसित- bloomed, समस्त करणचक्रस्य- with the grace of the whole wheel of energies. Such kind of yogi, by entering into that अनवच्छिन्नानन्दे- limitless state of joy, स्वात्मनि अपरितृप्तत्वेन- with which he never feels satiated, मुहुर्मुहुराश्चर्य माणताः - he feels more and more astonishment, ता एव भूमिकाः - this kind of joy is predominating state of yoga, योगस्य परतत्त्वैक्य संबन्धिन्यः - related to such a yogi who becomes one with Supreme God consciousness, तदध्यारोह- by that he can just ascend on the state of Śiva, विश्रान्ति सूचिकाः - indicative of the repose of the yogi, परिमिता- definite, भूमयः- stations, न तु- not, अनुभववृत्तयः - experiences which one may perceive in, कन्द- Mūlādhāra or in, बिन्दु- centre between the eye-brows, आदि- etc. तदुक्तं- the same has been said, श्री कुलयुक्तौ- in the following verse of Kulayukti :-

आत्मा- the self, चैवात्मना- by themselves, ज्ञातः- realise, यदा- when, साधकैः- aspirants, तदा- then, आत्मा- the self विस्मय- supreme, आत्मन्येव- within self, प्रपश्यति- perceives, एतच्च- the same has been संगृहीतं- explained, कारिकाया- in Spandakārikā also :-

तंस्वभावं- to his own nature, यः अवलोकयन्- when he perceives, अधिष्ठातृभावेन- through subjective perception not through objective perception, स्मयमान इव आस्ते- established in wonderful state of joy तस्य- to such a yogi, इयं-

this, कुसृति:- repeated births and deaths, कुत:- where from.

Just on seeing some wonderful object, one gets astonished, in the same way this great yogi always gets astonished on seeing the objective world of sense or an expansion of his complete complex of senses, as they come fully under the influence of innerself which is unique, intense, always fresh, uncommon to all, mass of consciousness. By entering his (organs) are filled with gleaming joy, one pointed and bloomed with the grace of the whole wheel of energies. Such kind of yogi by entering into that limitless state of joy, with which he never feels satiated but feels more and more astonishment. This kind of joy is predominating state of yoga, related to such a yogi who becomes one with Supreme God-consciousness. By that he can just ascend on the state of Śiva, indicative of the repose of the yogi, not experiences which one may perceive in Mūlādhāra or in vindu - centre between the eye-brows etc. The same has been explained in the following verse of Kulayukti :- When an aspirant perceives the state of the self by his own effect, then he experiences fullness of wonderful joy within itself. The same has been explained in Spandakārikā also :-

When one perceives his own nature through subjective perception not through objective perceptions, to such a yogi who is established in wonderful state of joy, to him there is no question of going down on the path of repeated births and deaths.

ईदृग् योग भूमिका समापन्नस्यास्य योगिनः -

इच्छा शक्तिरुमा कुमारी ॥ १३ ॥

icchā śaktirumā kūmārī

अस्य योगिनः- to that yogi, समापन्नस्य- who is established, in- ईदृग् योग भूमिका- such state of yoga, इच्छा शक्तिरुमा कुमारी- for him any desire is identical with supreme energy of Lord Śiva and hence his desire, cannot be checked by any power or this will is energy of Lord Śiva his will is उमा, his will is nominated as कुमारी।

योगिनः परभैरवतां समापन्नस्य या इच्छा सा शक्तिः उमा-परैवपरमेश्वरी स्वातन्त्र्य-रूपा, सा च कुमारी- विश्वसर्गसंहार क्रीडापरा 'कुमार क्रीडायां' इति पाठात्।

योगिनः- of such a yogi, परभैरवतां समापन्नस्य- who is established in, परभैरव- supreme, भैरव- state या इच्छा- his mere will is सा शक्तिः- energy of Lord Śiva and his will is one with उमा- Pārvatī, परैवपारमेश्वरी स्वातन्त्र्य रूपा- independent energy of Lord Śiva, सा च कुमार- that energy is Kumārī, विश्वसर्ग संहार क्रीडापरा- intent on the play of creation of the universe and destruction of the universe, “कुमार क्रीडायां” इति पाठात्- the root ‘कुमार’ (Kumāra) is the basis of this interpretation, meaning to play. Of such a yogi, who is established in Supreme, भैरव state, his will is energy of Lord Śiva and his will is one with Umā the highest independent energy of the Lord. This energy is Kumārī, intent on the play of creation and destruction of the universe. The root "Kumāra" to play is the basis of this interpretation. (this interpretation is from non-dualistic (अद्वैत or अभेद) point of view). This is Śāmbhavopāya.

Now the commentator interprets this sūtra from the bhedābheda (भेदाभेद) point of view :-

अथ च कुं भेदोत्थापिकां मायाभूमिं मारयति - अनुद्धिन्न प्रसरां करोति तच्छीला। कुमारी च परानुपभोग्या भोक्त्रैकात्म्येन स्फुरन्ती।

अथ- or “कुं” भेदोत्थापिकां मायाभूमिं- ‘कुं’ means differentiated perception, मारी means who destroys it or who does not allow Māyā to spread. That energy vanishes the differentiated perception and sentences that differentiated perception in one's own nature. Kumārī (कुमारी) means परानुपभोग्या- that virgin who is not enjoyed by any other agency, भोक्त्रैकात्म्येन स्फुरन्ती- one who remains always in the state of enjoyer.

She enjoys herself in own way, she does not require other agency. She is one with own nature. Not looking to other sex (This is according to Śāktopāya).

Or 'Kumārī' means the destroyer of differentiated perception. Who does not allow 'Māyā' to spread. She sentences that differentiated perception in one's own nature. She is Kumārī - virgin, who is not enjoyed by any other agency. She remains always in the state of enjoyer. She enjoys herself in her own way.

Now the commentator interprets the sūtra from the "beda" (भेद) point of view :-

अथवा यथा उमा कुमारी परिहृतसर्वासङ्गा महेश्वरै-कात्म्यसाधनाराधनाय नित्योद्युक्ता तथैव अस्येच्छा, इत्यस्मत् गुरुभिरित्थमेव पाठो दृष्टः व्याख्यातः च। अन्यैस्तु 'शक्तितमा' इति पठित्वा ज्ञानाक्रियापेक्षोऽस्याः प्रकर्षो व्याख्यातः।

अथवा- there is another way of explanation, यथा- just as, उमा कुमारी - virgin Umā, परिहृत सर्वासङ्गा- being fully detached from the world of enjoyment, महेश्वरैकात्म्य साधनाराधनाय नित्योद्युक्ता- was always established in her devotion and was thus one with Lord Śiva, तथैव अस्येच्छा - In the same way the will of that yogi is always sentenced to his own self, इत्यस्मत् गुरुभिः- by my respected teacher, इत्थमेव- in this way, पाठः- this reading, दृष्टः - found, व्याख्यातः च- and interpreted also, अन्यैस्तु- some other commentators of Śivasūtra ((इच्छा शक्तितमा कुमारी)) 'शक्तितमा' इति पठित्वा - have kept the reading of śaktitamā in place śaktirumā, ज्ञानक्रिया पेक्षोऽस्याः प्रकर्षो व्याख्यातः - by that way it means that the will of such a yogi is filled with energy of knowledge and energy of action. His इच्छा is pertaining to knowledge and action.

There is another way of explanation of this sūtra "इच्छा शक्तिरुमा कुमारी" as "इच्छा कुमारी उमाशक्ति"। just as virgin Umā, having abandoned world of enjoyments from all sides and her mind was established in Lord Śiva only i.e. She was always one with Lord Śiva, similarly the will of that yogi is always sentenced to his own self. This reading, found by my respected teacher in this way, was interpreted like this. Some other commentators of Śivasūtra have meant that the will of such a yogi is filled with energy of knowledge and action.

एवं न लौकिकवत् अस्य योगिनः स्थूलेच्छा, अपितु पराशक्ति-रूपैव सर्वत्र अप्रतिहता। तदुक्तं श्रीमत् स्वच्छन्देः -

सा देवी सर्वदेवीनां नाम रूपैश्च तिष्ठति।

योगमाया प्रतिच्छन्ना कुमारी लोकभाविनी॥ इति॥

श्रीमृत्युंजय भट्टारकेऽपि-

सा ममेच्छा परा शक्तिः अवियुक्ता स्वभावजा
वहेरुष्मेव विज्ञेया रश्मिरूपारवेरिव ॥

सर्वस्य जगतो वापि सा शक्तिः कारणात्मिका ॥ इति ॥ तदेतत्-
नहीच्छा नोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते ।

अपि त्वात्मबलस्पर्शात्पुरुषस्तत्समो भवेत् ॥

इति कारिकाया भङ्ग्या प्रतिपादितम् ॥ १३ ॥

एवं- thus, न लौकिकवत्- like that of a common man, अस्य योगिनः स्थूलेच्छा-
such type of yogi does not possess gross desire in his mind, अपितु- but,
पराशक्तिरूपैव- it is like Supreme energy of Lord Śiva, सर्वत्राप्रतिहता- every
where unhindered. तदुक्तं- as is said, श्रीमत्स्वच्छन्दे- in the following verse
of Svachchanda Tantra also:-

सा देवी सर्वदेवीनां- that divine energy abides in all the goddesses, नामरूपैश्च
तिष्ठति- in different names and forms, योगमाया प्रतिच्छन्ना- remains con-
cealed by yogamāyā कुमारी - is a virgin, लोकभाविना- desired by every
body.

In Mr̥tyuñjaya (Netratantra another name) Tantra also : it has been said:-
O Pārvatī ! सा ममेच्छा पराशक्ति- that highest energy is one with my own
will, अवियुक्ता- inseparable, स्वभावजा- as natural, वहेरुष्मेव- just heat is one
with fire, विज्ञेया- she is to be known, रश्मिरूपारवेरिव- as rays are one with
sun. सर्वस्य जगतोवापि- of the whole world, or साशक्तिः- that energy,
कारणात्मिका- is the cause.

तदेतत्- the same idea has been, भङ्ग्या- in another way प्रतिपादितं-
expressed, इति कारिकाया- in the following verse of Spandakārikā :-

अयं पुरुषः - the man of the world, नहि- does not, इच्छा नोदनस्य प्रेरकत्वेन वर्तते
- engage the senses in directing towards their objects, अपितु- but, आत्मबल
स्पर्शात् - by contact with the power residing in the self, तत्समो भवेत्- he can
be similar to that self.



TEMPLE VERSES

Translated in English by

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

(Continued from last issue)

Repeating the sacred mantras om, jum, saḥ I bow before that Bhairava who is the Lord of the Bliss of Enlightenment.

*karpūra gauram karuṇāvatāram
saṁsāra sāram bhujagendra hāram/
sadā vasantam hṛidayāravinde
bhavam bhavānī sahitaṁ namāmi//*

That Lord Śiva, whose body is white like camphor and who is the incarnation of supreme grace and the essence of this ever changing universe, is garlanded with snakes and vibrates in the lotus hearts of all His devotees. I bow before that Lord Śiva and his inseparable consort Pārvatī, the divine Mother.

*ādhīnāmagadham divyam
vyādhīnām mūlakṛintanam/
upadravāṇām dalanam
mahādevamupāśmahe//*

We worship that Lord Mahādeva, the only Supreme Divinity who is divine medicine for all mental afflictions, who is the complete destroyer of all diseases and who dispels all misfortunes.

*tvayyeva bhātaḥ smṛtivismṛitī te
dvayorapi tvam svayameva bhāsi/
tathāpi sāmukhyasukhābhivarṣiṇī
smṛtiḥ priyā te nahi vismṛtirme//*

Remembering you and forgetting you both reside in you, O Lord, as you alone shine in these both. Even then, O Lord, I treasure remembering you, not forgetting you, for in remembering you I enjoy the nectar of your nearness.

*maheśvare vā jagatāmadheśvare
janārdane vā jagadantarātmani/
na kopi bhedapratipattirasti me
tathāpi bhaktistarūṇenduśekhare//*

Devotion to Lord Śiva, who is the master of the three worlds, and devotion to Lord Nārāyaṇa, who resides in the heart of each and every living being, exists for me equally because nowhere does there exist a distinction of devotion. Even then, O my Lord, I prefer devotion to Lord Śiva on whose forehead shines the crescent moon.

*bhānunā tuhinabhānunā bṛihad-
bhānunā ca vinivartitaṁ na yat/
yena tajjagiti sāntimāntaram
dhvāntameti tadupāśmahe mahah//*

We bow and worship that Supreme effulgent light of consciousness where the light of the Sun has no glory, where the light of the moon has ceased to function, and where the light of the fire is extinguished. We worship that light of consciousness by which light the internal darkness of ignorance instantly vanishes.

*saṁgrahena sukhaduḥkhalakṣaṇam
mām prati sthitamidam śṛṇu prabho/
saukhyameṣa bhavatā samāgamah
svāminā viraha eva duḥkhitā//*

O Lord, please listen to the real description of my pleasure and my pain. "This co-union with your nature is my pleasure and separation from you, my Master, is the cause of my pain."

*dāsadhāmni viniyojito'pyaham
svecchayaiva parameśvara tvayā/
darśanena na kimasmi pātritaḥ
pādasamvahanakarmanāpi vā//*

O Supreme Lord, although it is by your will I have been placed in the position of being your slave, and yet why, even then I not been qualified to have your audience, your gaze or even the act of touching your feet.

*śaktipātasamaye vicāraṇam
prāptamīśa na karoṣi karhicit/
adya mām prati kimāgatam yataḥ
svaprakāśanavidhau vilambase//*

O independent Lord, you should have thought, at the time of showering your

grace on me, whether I was qualified for this grace. But, you never think in this way. Having received this grace look at my plight now that you delay in revealing your nature.

*astaṅgataṇḍavati prāṇe tvapāne'bhyudayonmukhe/
tāvat sā kumbhakāvasthā yogibhiranubhūyate//*

When the outgoing breath, which travels from the center of the eye-brows to external twelve finger spaces is over, and the incoming breath has yet to begin, there is an automatic pause which a yogi realizes and where he remains one pointed.

*yathā nimīlane kāle prapañco naiva dṛśyate/
tathaivonmīlane syāccedetaddhyānasya lakṣaṇam//*

Just as at the time of closing one's eyes the external differentiated world is not seen, so in the same way when, by the Grace of God, while practicing this meditation even though his eyes remain wide open this yogi sees nothing. These are the symptoms of correct meditation.

*prakāśamāne paramārthabhānau naśyatyavidyātimire samaste/
tadā budhā nirmaladr̥ṣṭayo'pi kiñcinna paśyanti bhavaprapaṇcam//*

When, while he is doing this practice, he realizes the Sun of Supreme Knowledge, and when his ignorance is ended and he becomes a realized soul, then no matter whatever he does he is soaked in God Consciousness everywhere and has attained eternal samādhi.

*praṇaṣṭavāyusamīcāraḥ pāśāṇa iva niścalaḥ/
paraivaiikyadharmajño yogī yogaviducyate//*

When his breath has automatically stopped completely at that time he is just like a rock and then he beholds the union of limited being in unlimited being. This kind of yogi is said to be a real master of yoga.

*Om Amṛteśvarabhairavam Svachchandanātham
śrī kaṇṭhanātham ṛṣī durvāsasam/
mānasputram tryambakanātham
āmardakanātham śrīnātham//
mānasputrīm ardhatryambakākhyām
tryambakādityam sangamādityam*

varśādityam aruṇādityam

Salutations to Lord Amṛteśvarabhairava, Svachchandanātha, Śrīkaṇṭhanātha, the sage Durvāsā, his mind born sons Tryambakanātha, Āmardakanātha, Śrīnātha and his mind born daughter Ardhatṛyambakā. Salutations to the other mind born sons Tryambakāditya, Sangamāditya, Varśāditya, and Aruṇāditya.

ānandam somānandam utpaladevam

ācāryavaram śrī śambūnātham

lakṣmaṇaguptam abhinavaguptam

kṣemarājaṃ yogarājaṃ ca,

Salutations to masters Ānanda, Somānanda, Utpaladeva, Ācārya Śambūnātha, Lakṣmaṇagupta, Abhinavagupta, Kṣemarāja, and Yogarāja

śriguru manakākaṃ śaivācāryam rāmam

tat śiśam śrī mahatābakākam

guru santati rūpeṇa avatāritam

śaivam śambhum īśvarasvarūpaṃ ca,

Salutations to Swamī Manakāka, Swamī Rāma, his disciple Swamī Mahatābakāka and their successor and disciple Īśvarasvarūpa, the embodiment of compassion and love.

bhairavam, rudram, śiva tantram

ālayam karuṇālayam/

namāmi bhagavat pādām

śankaram loka śankaram//

śankaram Śankarācāryam

mahāntam abhinavaguptam/

śaiva śankar avatāritam

īśvarasvarūpaṃ punaḥ punaḥ namāmi//

Again and again I salute the lotus feet of the Great Master Īśvarasvarūpa, the depository of all forms of the Śaiva Āgama, monist, dualist, and monist cum dualist. He is the successor of the great master Abhinavagupta and the embodiment of the all auspicious Śankara, the benefactor of the entire cosmos.



THINK IT OVER

आयुषः क्षण एकोऽपि
सर्वरत्नैर्न लभ्यते।
नीयते तत् वृथा येन
प्रमादः सुमहानहो॥

Even a moment of one's life cannot be purchased for all the wealth of the universe put together. If any one wastes his precious life aimlessly, his error is really unpardonable.

अनर्थेन विचारेण
वयः कुर्यात् न भस्मसात्।
बोधेन ज्ञान सारेण
दृश्यं कर्तव्यमात्मसात्॥

Precious life should not be reduced to ashes through foolish imaginations. Through the supreme wisdom, and the essence of knowledge one should merge the entire existence in the self.

हतं हतमिदं कस्मात्
आयुराततयानया।
पश्यन्नपि न पश्यामि
सूक्ष्मया काललेखया॥

Life's every moment is blasted by the powerful flows of time which is working silently even while seeing this, I am as though blind to it.

श्रुत्वापि शुद्ध चैतन्य -
मात्मानमति सुन्दरम्।
उपस्थेऽत्यन्त संसक्तो
मालिन्यमधिगच्छति॥

The self is pure consciousness and extremely beautiful, even after hearing it, how is it that one is polluted by lust for women ?

उद्धूतं ज्ञानदुर्मित्र -
मवधार्याति दुर्बलः।
आश्चर्यं काममाकांक्षेत्
कालमन्तमनुश्रितः॥

It is astonishing that even one who has become feeble and weak and reached one's last days should hunt after lustful enjoyment knowing that passion is the worst enemy of wisdom.

धीरस्तु भोज्यमानोऽपि
पीड्यमानोऽपि सर्वदा।
आत्मानं केवलं पश्यन्
न तुष्यति न कुप्यति॥

The hero, whether always given a feast or is always tortured, neither gets satiated nor becomes angry but sees the one absolute self.

निस्पृहं मानसं यस्य
नैराश्येऽपि महात्मनः।
तस्यात्मज्ञान तृप्तस्य
तुलना केन जायते॥

A great soul, who has no desire even in disappointment and who is satisfied with self-knowledge, cannot be compared with any one.

(Gems from Aṣṭavakra Gītā)

देहो देवालयः प्रोक्तो
जीवो नाम सदाशिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं
सोऽहं भावेन पूजयेत्॥

देह को जानो मन्दिर सुन्दर
शिव की मूर्ति जीव स्वयं।
पूजो सोऽहं भाव से प्यारे
तज लो अविद्या का मलजल॥



Mind

Mind is the cause of bondage and liberation. It is ever fluctuating. It jumps from one point to another in the twinkling of an eye. It has the power of creating or undoing the whole world in a moment. The oscillation of the mind generates the illusion. The mind is the effect of Avidyā or ignorance. Vasishtha speaks to Rāma—O Rāma ! annihilate this mind through destruction of Vāsanās or control of Prāṇa. Mind is nothing but a bundle of Vāsanās. If the Vāsanās are destroyed, the mind can no longer exist. The expansion and contraction of mind causes the display and dissolution of the world. Therefore, stop the action of the mind by controlling the Vrittis or Sankalpas or waves of thought. Control of the Prāṇa will lead to the control of the mind. Movement of the Prāṇa produces movement of the mind. The breath of life conducts as well as stops the business of the world. Restrain the breath by the practice of Prāṇāyāma or regulation of the breath. If the mind is destroyed, you will enjoy infinite bliss. If the visibles and the sight are merged in the seer, if the knower, knowable and knowledge are combined, that is, if there is dissolution of the triad (Triputilaya), you will realise the supreme peace of the Ātman. "Renunciation of desires, control of the breath, and right enquiry will contract the action of heart and mind, and consequently check the rise of passion and illusion. Right understanding weakens the sensuous mind. Wrong understanding thickens and fattens the carnal mind. The mind of a yogi is no mind. It is full of supreme consciousness. Just as copper is transmuted into gold by the process of alchemy, so also the sensuous mind is transmuted into pure mind by the process of meditation. Distinctions and differences are only created by the mind. They do not really exist. The lower or impure mind sports in the objects of the world. The higher or pure mind rests peacefully in the Supreme Self.

(From Yoga Vāsiṣṭha)



विज्ञानभैरव - समीक्षात्मक अध्ययन

मूल प्रवचनकार—

शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

(गतांक से आगे)

मध्यनाडी मध्यसंस्था बिससूत्राभरूपया।

ध्यानान्तर्व्योमयादेव्या तया देवः प्रकाशते ॥ ३५ ॥

अन्वय - मध्यनाडी मध्यसंस्था (भवति) बिससूत्राभरूपया ध्यानान्तर्व्योमया तया देव्या देवः प्रकाशते ॥ ३५ ॥

हृदय के बीच में रहने वाली सुषुम्णा नाम की मध्यनाड़ी, कमल के दण्ड में रहने वाले बहुत ही सूक्ष्म तन्तुओं (रेशे) के समान सूक्ष्म आकार वाली है। इस मध्यनाड़ी में चिदाकाशस्वरूप अन्तर्व्योम (आकाश) का ध्यान करने पर इसकी सहायता से साधक के हृदय में प्रकाशस्वरूप परभैरव प्रकाशित हो उठते हैं।

मध्यनाडी-सुषुम्णा।

मध्यसंस्था - जो मध्य धाम में विराजमान है। मध्य धाम के विषय में स्वामी जी महाराज कहते हैं कि यह धाम अनजाना है। साधक को चाहिए कि वह मध्यनाड़ी पर एकाग्रचित्त होवे। इसका स्वरूप कमल नाल के सूक्ष्म सूत्र के समान है अर्थात् इसका स्वरूप सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

“कमल नाल” को कश्मीरी भाषा में “नदरू” कहते हैं, जब हम ‘नदरू’ को तोड़ते हैं तो इसमें व्याप्त सूक्ष्म तन्तु-तार, दीख पड़ता है। मध्य नाड़ी का स्वरूप भी बराबर इसी तार के समान है अर्थात् “बिससूत्राभ”-बिसनदरू के, सूत्र-तारके, आभ-समान।

ध्याता-जब इस प्रकार यह मध्यनाड़ी ध्यान का विषय बनती है तो उस में वह बिससूत्र के समान दीख पड़ती है अर्थात् कन्दस्थान से ब्रह्मरन्ध्र तक इसी रूप में प्रकट होती है स्मरण रहे कि मन की परिधि से इसका क्षेत्र परे है। यह मध्यनाड़ी समावेश दशा में हमें तन्मय बनाती है।

यह पूर्ण शाम्भवोपाय की विधि है।

स्वामी जी से किसी शिष्य के पूछने पर कि इसका तात्पर्य क्या है? ‘कि मध्यनाड़ी

से ही मध्यनाड़ी का स्वरूप समझा जाय? तो इस पर स्वामी जी महाराज कहते हैं कि जब मध्यनाड़ी पर पहुंचते हैं तो साधक की वैयक्तिक चेतना वहां काम नहीं आती है। मध्यनाड़ी को छोड़कर मध्यनाड़ी का स्वरूप अन्य किसी उपाय से ग्राह्य नहीं हो सकता। चैतन्यावस्था से ही उसका स्वरूपलाभ होता है वहां अन्य किसी उपाय की पहुंच नहीं है। अतः यह शाम्भवोपाय है। शाम्भवोपाय यह नहीं हो सकता। यहां पर प्रमातृभाव है। भैरव परादेवी के द्वारा प्रकाशित होता है। यह शाक्तोपाय धारणा नहीं है क्योंकि यहां केवल सुषुम्णा नाड़ी का ही संकेत है। सुषुम्णा नाड़ी इतनी सूक्ष्म है कि वह ग्राह्य वर्ग से परे है। यह बात उल्लेखनीय है कि प्रक्रिया में तीन उपायों का निर्देश है जिनमें शाम्भवोपाय सर्वप्रथम है। शाक्तोपाय और आणवोपाय क्रमशः दूसरा और तीसरा उपाय है। विज्ञान भैरव नामक इस पुस्तक में साधक भिन्न-भिन्न धारणाओं के माध्यम से स्वयं ही इस तथ्य की पुष्टि करता रहेगा कि वह किस उपाय विधि में प्रतिष्ठित है।

इस अधोलिखित श्लोक में “आणवोपाय” का सरल रूप से वर्णन किया गया है:-

कररुद्धदृगस्त्रेण भ्रूभेदात् द्वारोधनात्।

दृष्टे बिन्दौ क्रमाल्लीने तन्मध्ये परमास्थितिः ॥ ३६ ॥

अन्वय- (कररुद्धदृगस्त्रेण द्वारोधनात् (यः) भ्रूभेदः (तस्मात्हेतोः) बिन्दौ दृष्टे क्रमात् लीने च (सति) तन्मध्ये परमा स्थितिः (स्यात्) ॥ ३६ ॥

अपनी अंगुलियों से आंख आदि को दबाने से योगी जब इन इन्द्रियों के बाहर जाने के मार्गों को रोक लेता है, तो इनकी सहायता से भ्रूमध्य में स्थित ग्रन्थि को वह काट डालता है। इसके परिणामस्वरूप (भ्रूमध्य में) प्रकाशबिन्दु का दर्शन होने लगता है और बिन्दु में मन के एकाग्र होने से अथवा विलीन होने से योगी को ज्ञानाकाश में प्रकाशात्मक अवस्था में स्थिति हो जाती है।

कररुद्ध दृगस्त्रेण - अंगूठे और तर्जनी (Indexfinger) आदि अंगुलियों रूपी हथियारों से आंख आदि इन्द्रियों को, दबाकर।

इन्द्रियों का दबाने से तात्पर्य है कि दो आंखें, दो नथनें, दो कान और मुख को बन्द करने से। हमें अपने हाथों से इन इन्द्रिय द्वारों को बन्द रखना है पर बन्द रखने से पूर्व हमें संपूर्ण समाहितता बरतनी है, जब समाहितभाव आयेगा, तभी इन्द्रिय द्वारों को तत्काल बन्द करना चाहिए। समाहित भाव की अवाप्ति के बिना यदि हम इन इन्द्रिय द्वारों को रोक लेंगे तो स्वामी जी महाराज कहते हैं कि हमें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा अपितु हमारी सांस रुक जायेगी और दम घुटता जायेगा। अतः हमें निरन्तर अभ्यास परायण होके समाहित

भाव में लीन होना चाहिए, आणवोपाय की प्रक्रिया को अपनाने से। इस समाहित भाव को, भ्रूमध्य भेदन (Piercing) से अर्थात् भ्रूमध्य में निरन्तर चिन्तन करने से प्राप्त किया जाता है। द्वार रोधनात् - सारे इन्द्रिय द्वारों को बन्द करने से हमें 'तारक प्रकाश' की अनुभूति सामने होगी। वह बिन्दु प्रकाश या तारक प्रकाश क्रम से घटता जायेगा और फिर तन्मध्ये परमास्थिति:-हमारी परम स्थिति में प्रतिष्ठा होगी अर्थात् परभैरवस्वरूप का साक्षात्कार होगा। यह उन्मीलन अवस्था न होके निमीलन अवस्था मानी जाती है। यह शाक्तोपाय नहीं है। यह निरा आणवोपाय है। इसी आणवोपाय से शाक्तोपाय की प्राप्ति होती है।

दृक्-आंखें। हाथों से केवल आंखें ही बन्द नहीं करनी है अपितु सारे इन्द्रिय द्वारों को रोक कर भ्रूमध्य में एकाग्रचित होना है।

दृक् बिन्दौ क्रमात् लीने-क्रमशः हमें तारक प्रकाश घटता रहेगा और जब संपूर्ण रूप से यह कम हो जायेगा तो परभैरव स्थिति में हम सुप्रतिष्ठित होंगे।

स्मरण रहे कि निमीलन समाधि तारक प्रकाश के न दीखने पर ही अभिव्यक्त होती है॥

धामान्तः क्षोभसंभूत सूक्ष्माग्नि तिलकाकृतिम्।

बिन्दुं शिखान्ते हृदये लयान्ते ध्यायतो लयः ॥ ३७॥

अन्वय- धामान्तः क्षोभ (अन्तः क्षोभेण) संभूत सूक्ष्माग्नि तिलकाकृतिं बिन्दुं शिखान्ते हृदये (च) ध्यायतः, लयान्ते लयः (स्यात् इतिशेषः) ॥ ३७ ॥

आंखों के जोर से दबाने से, उनमें रहने वाले तेज की सूक्ष्म अग्निकणों की सी तिलकाकार आकृतियां चमक उठती हैं। उनमें से किसी एक बिन्दु को पकड़ कर ऊर्ध्व द्वादशान्त और हृदय में उसका ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान की सहायता से योगी के सारे जगत् संबंधी विकल्प शान्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् परम तेज में उसका समावेश हो जाता है॥

धाम - आंख की कनोनिका (pupil) जिससे हम आकार को समझ और देख सकते हैं। अंगुली से इसे दबाकर इसमें क्षोभ पैदा करना चाहिए। ऐसा करने से हमारी आंखों के सामने सूक्ष्म आकार का प्रकाशबिन्दु दिखेगा जिसका चिन्तन एकाग्रचित्त से ऊर्ध्वद्वादशान्त और हृदयधाम पर करना चाहिये। इस प्रकार इस अभ्यास प्रक्रिया के अन्त पर परम तेज में समावेश हो जाता है।

यह आणवोपाय है यह शाक्तोपाय नहीं हो सकता क्योंकि इस प्रक्रिया में भी अनेक

साधन अपनाने पड़ते हैं।

अन्तः - आंखों के अन्दर

क्षोभ - दबाना, संभूत - पैदा होगी

सूक्ष्माग्नि तिलकाकृति - छोटी तिलकाकार सी चिंगारी

शिखान्ते - ऊर्ध्वद्वादशान्त में

हृदये - हृदय में, दो सांसों में

लयान्ते - इस साधना के अन्त पर

लयः - समावेश

शिखान्ते, हृदये - ऊर्ध्वद्वादशान्त और हृदय, दोनों स्थानों पर एक साथ एकाग्रचित्त से चिन्तन होना चाहिए। क्रमशः नहीं। प्राणापान की गति से भी नहीं।

अनाहते पात्रकर्णेऽभग्नशब्दे सरित् द्रुते।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३८ ॥

अन्वय - पात्रकर्णे, सरित् द्रुते, अभग्नशब्दे, अनाहते शब्द ब्रह्मणि यः) निष्णातः (सः) परंब्रह्म अधिगच्छति ॥ ३८ ॥

शब्द ब्रह्म में जो पूरी तरह से निमग्न हुआ हो, अर्थात् शब्द ब्रह्म के स्वरूप को जो ठीक से पहचानता हो, वह साधक अनायास परब्रह्म को पा लेता है। यह शब्द शरीर के भीतर सुनाई पड़ने वाला और किन्हीं दो वस्तुओं के टकराव से पैदा न होने वाला और श्रवणेन्द्रिय (कान) से ही सुनने की पात्रता के योग्य होता है। यह शब्द शीघ्र गति से बहने वाले सरित् (cascade) प्रवाह की तरह अनवच्छिन्न (uninterrupted) है॥

अनाहते - बिना किसी टकराव से पैदा होने वाले शरीर के भीतर ही सुनाई पड़ने वाले नाद को अनाहतनाद या अनहदध्वनि कहते हैं।

पात्रकर्णे - जो अपने कानों से सुनाई दे। यह ध्वनि बाह्य साधनों से व्यक्त नहीं होती।

अभग्न शब्दे - निर्बाधगन्ति से उत्पन्न होने वाला शब्द।

सरित् द्रुते - प्रवहमान वेगशील नदी प्रवाह की तरह।

शब्द ब्रह्मणि - नाद भट्टारक शब्द ब्रह्म में

निष्णातः - भली भांति समझने में समर्थ

परं ब्रह्माधिगच्छति - परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है अर्थात् सतत प्रवहनशील अनाहत ध्वनि में मन को एकाग्र करके योगी का प्रकाशात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

यह शाक्तोपाय है क्योंकि यहां किसी मन्त्र या उच्चार या प्राणापान गति आदि का सहारा नहीं लेना है। केवल समाहितता को संभाले रखना है अनाहत नाद में या अनवच्छिन्न गति से प्रवहमान सरित् शब्द में। यदि हम अपने कानों पर अंगुलियां रखें तो हमें अनाहत ध्वनि का आभास होगा। यदि हम अपने हाथों को प्याले के आकार का सा रखें तो उस नाद की एकतानता का अनुभव होगा।

यह निरा शाक्तोपाय है।

प्रणवादिसमुच्चारात् प्लुतान्ते शून्यभावनात्।

शून्यया परया शक्त्या शून्यतामेति भैरवि॥ ३९॥

अन्वय - हे भैरवि ! प्रणवादिसमुच्चारात् प्लुतान्ते शून्यभावनात् शून्यया परया शक्त्या शून्यतां एति॥

हे भैरवी ! प्रणव - ऊँकार आदि के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के भेद से उच्चारण करने से और प्लुत स्वर के उच्चारण के अन्त में प्लुत की विश्रान्ति हो जाने पर, प्रमेयों का सहारा न लेकर शून्य की भावना करने से सभी तरह के वेद्य विषयों से शून्य अवस्था को प्राप्त पराशक्ति की सहायता से साधक शून्यता को अर्थात् भेदरहित पर-भैरव स्वरूप को प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

भैरवि - हे पार्वती !

प्रणवादि - आदि शब्द से यहाँ भेद का तात्पर्य है। प्रणव ऊँकार-तीन प्रकार का है:-

(१) ॐ - यह वैदिक प्रणव है

(२) हूँ - यह शैव प्रणव है

(३) ह्रीं - शैव सिद्धान्त के अनुसार यह माया प्रणव है। अर्थात् यह शाक्तागम संमत प्रणव है।

इनमें से किसी भी प्रणव का उच्चारण किया जा सकता है। हमें ॐ का उच्चारण सीधे रूप में नहीं अपितु अर्धमात्रा को लम्बा करके करना चाहिए। इसी प्रकार 'ह्रीं' का भी उच्चारण करना चाहिए।

परया शक्त्या शून्यया - सभी प्रकार के वेद्य वर्ग शून्य अवस्था को प्राप्त पराशक्ति की सहायता से।

शून्यतामेति - भेद रहित परमेश्वर स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

आरंभ में आणवोपाय का ज़रा सा स्पर्श है, पर आगे चलकर यह निरा शाक्तोपाय है।

आरंभ में आणवोपाय इसीलिए है कि मन्त्र (प्रणव) का पहले उच्चारण करना है। मन्त्र उच्चारण ही आणवोपाय है।

यदि कुछ शब्द भी सुनाई दे पर शब्द पर समाहित न होकर शब्द की शून्यता पर समाहित होना चाहिए।

समुच्चारात् - अनेक प्रकार के समुच्चार का अर्थ है ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से करना होता है।

कहा गया है कि 'ऊँकार' की प्लुत उच्चारण द्वारा एक आवृत्ति करने से साधक का हृदय प्रकाश से भर आता है।

यस्य कस्यापि वर्णस्य पूर्वान्तावनुभावयेत्।

शून्यया, शून्यभूतोऽसौ शून्याकारः पुमान्भवेत्॥ ४०॥

अन्वय - पूर्वान्तौ यस्य कस्यापि वर्णस्य अनुभावयेत् असौ पुमान् शून्यया (परया शक्त्या) शून्यभूतः शून्याकारः भवेत्॥

केवल प्रणव (ऊँकार) का ही नहीं अपितु वर्णमाला के जिस किसी भी वर्ण की पहली और अन्तिम अवस्था अर्थात् आरम्भ और अन्त पर किसी भी वर्ण के या मन्त्र के उच्चारण करने में, उस की उच्चारण करने की इच्छा तथा उस की विराम अवस्था का शून्य से व्याप्त रूप में ध्यान करूँ। इस तरह की भावना करने से साधक शून्य शक्ति के द्वारा, शून्य स्वरूप शून्याकार होकर शून्य में लीन हो जाता है॥

पूर्वान्तौ - "ॐ" या "सौ" बीज के उच्चारण करने के आरंभ या अन्त में। अर्थात् जब हम बोलने की तैयारी में हों अभी बोलना आरंभ नहीं किया हो उस पूर्व काल और अन्त काल में हम, अनुभवायेत् - उस शून्य दशा का चिन्तन करें। किसी मन्त्र के उच्चारण करने से पहले हमारे अन्दर क्या है? कुछ भी नहीं। वहां केवल कुछ शक्ति है, कुछ प्रेरणा है। उसी को इच्छा प्रसर कहते हैं।

यह अनुत्तर शून्यावस्था परम शिव की शून्यावस्था है जो न सकारात्मक है न नकारात्मक है। वास्तव में उस अवस्था में सब कुछ सकारात्मक ही है। इस अवस्था में मन्त्र बोलता नहीं पड़ता है। केवल यह सोचना कि हम मन्त्र का उच्चारण करेंगे। आप मन्त्रोच्चार की उस शक्ति को रोक कर रखते हैं। जैसे आप कुछ खाने को जा रहे हों पर कोई आपका मुख उसी समय पकड़ेगा और खाने को कुछ नहीं देगा इसी प्रकार से यहां भी समझना चाहिए। जब आप उस शून्य अवस्था का आस्वाद लेते हैं तो आपको शान्ति मिलती है वहां आपका एकाग्रचित्त होना है।

आरम्भ और अन्त दोनों सक्षम हैं। शून्य भावना पर समाहितता को दृढ़ बनाने से, असौ - यह साधक, जो मंत्र का उच्चारण करता है, या जो इस विधि को अपनाता है, वह शून्याकार ही होता है। उस का स्वरूप भगवान् शिव के शून्य रूपता का प्रतीक बनता है। यही शिवावस्था है यही विश्वोत्तीर्ण अवस्था है। यही शाम्भवोपाय है। यह शून्यता असद्भाव है। स्वामी जी कहते हैं कि कारिका में 'शून्यया' के बाद अर्धविराम लगाना चाहिए उससे अर्थ में स्पष्टता आ जाएगी। वे इस तथ्य को पुनः दोहराते हैं कि ये सारी विधियां शक्ति तत्त्व से सम्बन्धित हैं शिव तत्त्व से नहीं। यहां तक कि शाम्भवोपाय में भी "शैवीमुखं इहोच्यते" इस कथन के आधार पर शक्ति ही शिव तक पहुँचने का द्वार है ॥ ४० ॥



काश्मीर शैवदर्शन पर कविराज जी के विचार

— डा० नवजीवन रस्तोगी

(प्राचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

(गतांक से आगे)

इस भेद का या दूसरे शब्दों में अलौकिक सम्बन्ध का आविष्कार कर विशिष्ट रस के आस्वादन में ही रस-साधना की सार्थकता है। रसज्ञ सामाजिकगण इसी कारण निर्विशेष सामान्यात्मक ब्रह्मानन्दलाभ को रसचर्चा का चरमफल नहीं मानते। ब्रह्मानन्दरस में माधुर्य नहीं है। माधुर्य एक मात्र भगवदानन्द रस में है। अतएव सविशेष भगवद्भाव में आरूढ़ हुए बिना पूर्णभाव से रस का आस्वादन नहीं हो सकता।

प्रश्न हो सकता है कि यह रस केवल शान्तरस है या दास्य भी। शान्तभाव को भक्ति का बीजभाव कहा जा सकता है पर परिस्फुट भक्ति का आकार दास्य भाव में ही मिलता है। सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से भक्ति के रसत्व को लेकर दो मत हैं—मम्मट इत्यादि आलंकारिक भक्ति को भाव की कोटि में डालते हैं। कुछ लोग भक्ति को रस मानने में असहमत नहीं हैं पर उसे वे शान्तरस से पृथक् मानने का कोई कारण नहीं देखते। दूसरी ओर भक्तगणों का कहना है कि भक्ति जब अद्वैत आत्मतत्त्व-विषयक वृत्तिविशेष है तब उसके रसत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भक्ति-शास्त्र में शान्तरस स्वयं भक्तिविशेष है, मुख्य भक्ति तो रसस्वरूपा है।

सूफी मत से तुलना करते हुए कविराज जी ने इस प्रसंग को और भी गंभीरता से लिया है। सूफियों की ही भांति काश्मीर शिवाद्वयवादी भी परमार्थ तत्त्व को सौन्दर्यस्वरूप, आनन्दरूप मानते हैं। पूर्ण सुन्दर अपने में ही अपने प्रतिबिम्ब को देखता है और आनन्दमय हो उठता है। सचमुच भगवान् अपने रूप को देखकर स्वयं मुग्ध हैं—सौन्दर्य का स्वभाव ही यही है। इसे ही काश्मीर दर्शन में स्वात्मचमत्कार कहा गया है। यह चमत्कार ही पूर्णाहंता चमत्कार है, काम या प्रेम इसी का प्रकाश है। यही शिवशक्ति के सम्मिलन का प्रयोजन और कार्य स्वरूप है—आदिरस अथवा शृंगार रस है। विश्व-सृष्टि के मूल में यह रस तत्त्व प्रतिष्ठित है। शान्त और शृंगार इन दोनों रसों में कौन आदि रस है और भक्ति का स्रोत क्या है इस विषय में मतभेद है। मुख्य बात यह है कि शान्त और शृंगार दोनों ही रसास्वादन की प्रांतावस्थायें हैं। काश्मीरी शैवाचार्य यद्यपि शान्तरस को प्रधान बताते हैं तथापि शिवशक्ति के सामरस्यस्वरूप में वे शृंगार का शान्त के साथ समन्वय करते हैं।

कविराज जी इस प्रश्न को यहीं पर छोड़ देते हैं। इतना ही कहना यथेष्ट मानते हुए कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आचार्यों ने भक्ति को रस रूप स्वीकार कर एक अध्यात्म राज्य के गंभीर तत्त्व को प्रकट कर दिया है। उत्पलाचार्य ने अपनी शिवस्तोत्रावली के पहले ही स्तोत्र में भक्ति को रसरूप प्रतिपादित किया है। उस रस की यही विशेषता है कि इस अवस्था में दूसरे के न होते हुए भी दूसरा रहता है। अज्ञान के नष्ट हो जाने पर भी, ऐक्य-स्फुरण होने पर भी उस ऐक्य की गोद में दो रह सकते हैं क्योंकि वे दोनों ही एक के ही शुद्ध भाव में आत्म-प्रसारण हैं। यही द्वैताद्वैत का सामञ्जस्य है। यही ईश्वराद्वयवाद की विशेषता है। प्रश्न उठता है कि परमात्मा तो अपने स्वरूपानंद में सदा विश्रान्त रहता है तब दुःख की ओर उसकी उन्मुखता क्यों होती है? सोमानंद आदि का उत्तर है कि उनका स्वरूप-प्रसरण ही रस या आनन्दास्वाद है। यह सम्पूर्ण जगत् परमसुन्दर की अभिव्यक्ति मात्र है। इसलिए यह स्वरूप-प्रसरण ही रस या आनन्दास्वाद है। यह सम्पूर्ण जगत् परमसुन्दर की अभिव्यक्ति मात्र है। इसलिए यह स्वरूप-प्रसरण कार्य कुत्सित या खराब नहीं है—मायाशक्तिकृत पूर्णस्वरूप का अख्यातिमय विचित्र कार्यरूप से जो प्रसरण है, वही रसनिमित्तक स्वरूप-प्रसरण है।

यह स्वरूप-प्रसरण, यह आत्म-सिन्धु का तरंगित होना उल्लास या रस है। इसका वैचित्र्य ही लीला विस्तार है। यह तरंग शुद्धस्वरूप में सदा वर्तमान रहती है, इसलिए वैष्णवों के समान शैव भी नित्यलीला मानते हैं। शाक्त दृष्टिकोण से यह शक्ति नित्यलीलामयी है। फिर शक्ति तो शिव ही है, इसीलिए वह लीलातीत भी है। इस दृष्टि से लीलातीत स्थिति भी लीला का ही एक अंग है। इस विश्वनाटक का जो सूत्रधार है, वही नट है, प्रेक्षक भी वही है। साथ ही साथ इन सभी के ऊपर वह अपने में आप ही विश्राम कर रहा है। इन सब अनन्त वैचित्र्यों को लेकर भी, वह एक ही है। यही परम अद्वय का स्वरूप है।

अभी हमने देखा कि परम तत्त्व के कृति-सामर्थ्य को और सृष्टि की उपादान-निरपेक्षता को बताने के लिए प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा में योगी का दृष्टान्त लिया गया है। सच पूछा जाए तो चिदात्मतत्त्व और योगी के समीकरण का उपयोग दो बातों की सिद्धि के लिए किया गया है—एक तो जगत् की सृष्टि इच्छाशक्तिमूलक या इच्छोपादान है और दूसरे ज्ञान और भक्ति की ही भांति ज्ञान और योग का यहां चरम स्थिति में सामंजस्य है। दूसरे शब्दों में ज्ञातृत्व और कर्तृत्व में एकरूपता है—अर्थगत भेद के बावजूद तत्त्वगत ऐक्य है। चिदात्मतत्त्व ज्ञानरूप है अतः उसकी क्रिया ही ज्ञान है क्योंकि ज्ञान ज्ञाता का धर्म है तथा उसके कर्तृस्वभाव होने के कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इन दोनों की अवियोगावस्था ही चिदात्मता है। इस ज्ञान और क्रिया की उन्मुखता का नाम इच्छा है। इसी कारण यह

इच्छामय है और इसीलिए सृष्टि इच्छोपादान या उपादाननिरपेक्ष है। इस अवस्था में इच्छा की अतृप्ति नहीं होती, इसलिए दुःख का अवकाश नहीं होता। इसीलिए जो योगी है, वह सदा आनन्दमय है। इच्छा-राहित्य की स्थिति ज्ञान की, साक्षित्व की, दृष्टत्व की स्थिति है। इच्छामयता की स्थिति दृष्टत्व और भोक्तृत्व और कर्तृत्व, शिव और शक्ति की स्थिति है। इस प्रसंग में यह याद दिलाना उचित होगा कि क्रम दर्शन में सत्तर्क को योग का सबसे उत्तम अंग माना गया है। सत्तर्क है शुद्ध बोध, प्रातिभ ज्ञान, स्वात्म-परामर्श। पारिभाषिक तौर पर इसे सांसिद्धिक और स्वप्रत्ययात्मक निश्चित ज्ञान कहा गया है जिनमें स्वतः ही सत्तर्क का उदय होता है, उनके सारे बंधन ढीले हो जाते हैं और पूर्ण शिवभाव का आविर्भाव होता है। इनको सांसिद्धिक गुरु भी कहा जा सकता है। ऐसे योगी या ऐसे ज्ञानी दोनों ही अब पर्याय हैं—पूर्णत्व लाभ करके भी निष्क्रिय नहीं रहते। क्रिया उनका सहज धर्म बन जाता है। अपने में कृतकृत्य होने पर भी लोकानुग्रह या लोकसंग्रह उनका कर्तव्य बन जाता है। ज्ञान और क्रिया का यह समन्वय लोकस्थिति में भी अव्याहत रहता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम एक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। मुक्ति की जो धारणा यहां की गयी है वह उपर्युक्त समीकरण या समीकरणों का अर्थात् शिव-शक्ति सामरस्य के मूल प्रत्यय का विस्तार मात्र है। कल्लट की उक्ति को उद्धृत करते हुए वह कहते हैं कि जीवन्मुक्त जगत को आत्मक्रीडा अर्थात् आत्मशक्ति के विलास के रूप में देखते हैं, उनकी योगावस्था कभी भग्न नहीं होती। भेद और अभेद, व्युत्थान और निरोध दोनों के अंदर साम्यदर्शन होने पर कोई आशंका नहीं रह जाती क्योंकि दोनों एक ही के दो प्रकार हैं। इसलिए आगमसम्मत मुक्ति को परामुक्ति कहा गया है। परामुक्ति पूर्णत्व है। पशुत्व या संकोच की निवृत्ति होकर शिवत्व की अभिव्यक्ति का नाम मुक्ति है। देह रहते इस स्थिति की प्राप्ति जीवन्मुक्ति, तथा देहपात के अनन्तर विदेहमुक्ति कही जाती है। मुक्ति के बाहरी आकार का जहां तक सम्बन्ध है वेदान्त और प्रत्यभिज्ञा में अन्तर नहीं है। वहां पर जीव का ब्रह्मीभाव है और यहां परमशिवीभाव। परन्तु वस्तुतः दोनों में वही भेद है जो ब्रह्म और शिव के स्वरूप में जिसकी विस्तृत चर्चा ऊपर हम कर आए हैं। एक साक्षित्व, चैतन्य और बोधरूपता की स्थिति है, दूसरी बोध और कर्तृत्व की समरसता की। एक दूसरा भेद भी है—प्रक्रियागत। वहां अविद्या की निवृत्ति है, यहां अविद्या का विद्यास्वरूपबोध में उदात्तीकरण है। इसलिए वेदान्त की मुक्ति को त्रिकदार्शनिक 'पूर्णत्व' रूप नहीं मानते। जयरथ ने वेदान्त मुक्ति की जो आलोचना की है उसमें उसकी तुलना सवेद्य प्रलयाकल प्रमाता की अवस्था से की है इसका तात्पर्य है कि जयरथ की दृष्टि में आणवमल (स्पष्टता के लिए कह सकते हैं पौरुष ज्ञान होने पर भी उसके स्वातन्त्र्य का अप्रकाशन) मुक्तावस्था

में पूर्णरूप से निवृत्त नहीं होता अतः पुनरावृत्ति निवृत्त नहीं होती। कुछ लोग वेदान्तमोक्ष को सांख्यमोक्ष की भांति विज्ञानकैवल्य अर्थात् विज्ञानाकल प्रमाता की स्थिति के समान मानते हैं। विज्ञानकेवली की कर्म न होने के कारण पुनरावृत्ति नहीं होती और आणवमल की ध्वंसोन्मुखता के कारण उससे कर्मों की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य है कि वेदान्तमोक्ष केवल विज्ञान की स्थिति है जिसमें अज्ञान नष्टप्राय है और पुनरावृत्ति भी नहीं है, पर वह ज्ञान अकिंचित्कर है।

इसके विपरीत काश्मीर शिवाद्वयवाद में पूर्णतासादन ही मुक्ति है। पूर्णता का अर्थ है भोग और मोक्ष की साम्यावस्था। भोक्ता और भोग्य के एकीभाव को भोग भी कहते हैं और मोक्ष भी। इस धारणा के बीज हमें अभिनवगुप्त से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। महेश्वरानन्द भोग मोक्ष की अनुभूति के सामरस्य को त्रिकदर्शन की अन्यतम विशेषता मानते हैं। इस अवस्था की अर्थात् अपनी विश्वात्मकता की 'सर्वो ममायं विभवः' इस प्रकार की अनुभूति होती है। यह विश्वात्मकता आत्मा का स्वभाव है, आहार्य या आगन्तुक धर्म नहीं। इस आत्मविमर्श का ही नामान्तर जीवन्मुक्ति है।

प्रश्न है कि इस मोक्षस्थिति का उदय कैसे होता है? कर्म अथवा अविद्या की निवृत्ति से ज्ञान का उदय होता है या ज्ञान के उदय से कर्म का क्षय। इसमें जैन दर्शन के अनुसार जब तक कर्मपुद्गल न हटेंगे तक तब सम्यक् दर्शन का उन्मेष नहीं होगा। इसके विपरीत भारतीय दर्शन में सामान्यतः दर्शन का उदय पहले माना जाता है—चाहे वह भगवदनुग्रह के प्रभाव से हो, चाहे तीव्र पुरुषकार के फल के रूप से हो, उसके बाद ग्रन्थिभेद, संशयोच्छेद और कर्मक्षय होते हैं। परन्तु तान्त्रिक दर्शन में इस परस्पर विरुद्ध द्विविध स्थिति का समन्वय दिखाई देता है। आत्मा के आच्छादक हैं—आणवमल और मायाकंचुक। आणवमल से स्वरूप का संकोच होता है और मायाकंचुकों से आत्मा की ईश्वरीय शक्तियों का परिच्छेद होता है। पहले मूलभूत आवरण हट जाना चाहिए, नहीं तो सम्यक् दर्शन का उदय होना सम्भव नहीं है। इन आवरणों का परिपाक ठीक-ठीक होने पर आत्मा के ऊपर अनुग्रह शक्ति का संचार स्वभावतः होता है और दीक्षाकाल में क्रियाशक्ति के प्रयोग से आवरणभूत अकिंचिद्भाव हट जाता है। इसी प्रकार पौरुष अज्ञान का तिरोभाव होता है तथा तदनन्तर यथासमय ज्ञान का आविर्भाव होता है।

अद्वैतवादी तन्त्र के मत से अज्ञान तथा ज्ञान दोनों ही पौरुष और बौद्ध भेद से दो-दो प्रकार के हैं। पौरुष ज्ञान विकल्पहीन है। यह कृत्रिम अहंकारादिरूप विकल्पात्मक नहीं है अपितु पूर्णाहन्ताबोधमय या 'पूर्णोऽहम्' इत्याकारक है। परमेश्वर का परम तादात्म्य प्राप्त

होने पर ही इसकी अभिव्यक्ति होती है। इस तादात्म्य-लाभ के पहले ही सारे बन्धन निवृत्त हो जाने चाहिये। बन्धन-निवृत्ति का हेतु पौरुष-अज्ञानात्मक आणवमल का तथा कर्म एवं मायीय मलों का क्षय है। दीक्षा के प्रभाव से आणवमल का पौरुष अज्ञान वाला अंश निवृत्त होता है। परन्तु, देहार्म्भक कर्ममल रहने के कारण पौरुष ज्ञान का उदय नहीं होता। यह मल ही प्रारब्ध कर्म है। इसके कट जाने पर देहपात होता है। उस समय साक्षात्कारात्मक पौरुष ज्ञान उदित होता है, अर्थात् जीव शिवरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। शक्तिपात की तीव्रता के अनुसार दीक्षा का क्रम भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। तीव्रतम शक्तिपात में अनुपाय-क्रम से दीक्षा होती है, जिससे एक क्षण में ही अपवर्ग की प्राप्ति हो जाती है। शक्तिपात क्रमशः कम होने से शाम्भवी दीक्षा, शाक्ती दीक्षा, आणवी दीक्षा होती है। दीक्षा के सिवा मुक्ति का कोई और उपाय नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु बाह्य क्रिया की आवश्यकता सर्वत्र नहीं रहती यद्यपि आत्म-संस्कार रूप आन्तर दीक्षा तो अवश्य होनी चाहिए। अद्वैत आगमशास्त्रों से जो बौद्धज्ञान उत्पन्न होता है, उसके प्रभाव से बौद्ध अज्ञान और उसका कार्य नष्ट हो जाता है। इससे जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। दीक्षादि से बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती। इसी से दीक्षा होने पर भी विकल्प का उदय होना संभव है। बौद्धज्ञान होने से विकल्पों का उन्मूलन होता है और सदयोमुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु जिस चित्त में विकल्प रह जाता है, उसकी मुक्ति देह रहते हुए नहीं होती। देह छूटने के बाद ही उसे शिवत्व प्राप्त होता है। विकल्पहीन चित्त की सदयोमुक्ति जीवन्मुक्ति है। विकल्प निवृत्त हो जाने पर मुक्ति में बाधा नहीं होती। अतएव, दीक्षा प्राप्ति से पूर्णत्व-लाभ पर्यन्त अवस्थाओं का क्रम इस प्रकार है—

१. दीक्षा।
२. पौरुष अज्ञान का ध्वंस।
३. अद्वय आगमशास्त्र के श्रवण में अधिकार और उनका श्रवणादि।
४. बौद्ध ज्ञान का उदय।
५. बौद्ध अज्ञान की निवृत्ति।
६. जीवन्मुक्ति।
७. भोगादि के द्वारा प्रारब्धनाश।
८. देहत्याग के अनन्तर पौरुष ज्ञान का उदय।
९. मोक्ष अथवा परमेश्वरत्व का प्राप्ति।

काश्मीर शिवाद्वयवाद का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है वाक् तत्त्व पर विचार। सच पूछिए तो विमर्श या प्रत्यवमर्श के प्रत्यय में वाक् की मौलिक अवधारणा अंतर्भूत है। अपनी ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-कारिका में उत्पल चैतन्य को प्रत्यवमर्श-स्वरूप और प्रत्यवमर्श को स्वरसोदित परावाक् कह कर पौरुष अज्ञान का तिरोभाव होता है तथा तदनन्तर यथासमय ज्ञान का आविर्भाव होता है।

अद्वैतवादी तन्त्र के मत से अज्ञान तथा ज्ञान दोनों ही पौरुष और बौद्ध भेद से दो-दो प्रकार के हैं। पौरुष ज्ञान विकल्पहीन है। यह कृत्रिम अहंकारादिरूप विकल्पात्मक नहीं है अपितु पूर्णाहन्ताबोधमय या 'पूर्णोऽहम्' इत्याकारक है। परमेश्वर का परम तादात्म्य प्राप्त होने पर ही इसकी अभिव्यक्ति होती है। इस तादात्म्य-लाभ के पहले ही सारे बन्धन निवृत्त हो जाने चाहियें। बन्धन-निवृत्ति का हेतु पौरुष-अज्ञानात्मक आणवमल का तथा काम एवं मायीय मलों का क्षय है। मध्यमा, वैखरी, परावाक् परम परामर्शमय बोध रूप हैं। इनमें सभी भावों का पूर्णत्व है। पश्यन्ती अवस्था परावाक् की बहिर्मुखी अवस्था है। यह आन्तर प्रत्यवमर्श है। यह असाधारण रूप में होता है इसलिए इस अवस्था में प्रत्यवमर्श प्रमाता के द्वारा परामृश्यमान वाच्यार्थ अहन्ता से आच्छादित होकर स्फुरित होता है। वस्तुनिरपेक्ष व्यक्तिगत-बोध के उद्भव की यही प्रणाली है। यही प्रातिभ ज्ञान है। मध्यमा भूमि में आन्तर-परामर्श अंतर में ही विभक्त हो जाता है। उस समय यह वेद्य-वेदक प्रपंचोदय से भिन्न वाच्य-वाचक स्वभाव में उल्लसित होता है। यह अस्फुट होने के कारण इन्द्रिय से अगोचर है किन्तु वैखरी भूमि में इंद्रियगोचर और परिस्फुट होता है। वस्तुतः सूक्ष्म शब्दभावना ही वैखरी से स्थूल विकल्प का रूप धारण करती हुई स्थूल अर्थ का वाचन करती है। वाच्य वाचक का भेदात्मक विग्रह मूलतः प्रकाश-विमर्श के अभेद संबंध से ही वाक् के अवतरण क्रम से अस्तित्व में आता है।

इस वाक् तत्त्व पर दूसरा विचार मातृका तत्त्व के अन्तर्गत हुआ है। मातृका का अर्थ है जननी। या प्रमातृ-भूमि वाक् या उसका प्रतीक वर्ण अर्थ की उद्भव भूमि है अथवा विश्रान्ति पद। इसी अर्थ में वह मातृका है। कविराज ने इसे जिस प्रकार समझाया है उसका सार यह है। परम शिव में अपना विमर्श है जो स्वात्म-विश्रान्त है। परमात्मा स्वेच्छा से उस विमर्श के लेश रूप में अकारादि वर्णों का उद्भावन करते हैं। ये सब वर्ण भिन्न परामर्शों के वाचक हैं। जैसे 'अ' वर्ण अनुत्तर नामक परामर्श का वाचक है, 'आ' वर्ण आनन्द नामक परामर्श का वाचक है इत्यादि। उक्त प्रक्रिया से उद्भावित वर्णों की योजना द्वारा अष्ट वर्ग तथा विभिन्न प्रकार के पद, वाक्य आदि प्रकट होते हैं। इसके अनन्तर इन सब वर्णों की

विकल्प रूप में क्रिया होती है। तदनन्तर अणुरूपी आत्माएं स्वयं उन विकल्पों के अधीन हो जाती हैं। पशुत्व अथवा जीवभाव के उदय का यही क्रम है। शिवदशा का उन्मेष होने पर ये सब ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि शक्तियां जीव का भेदभाव हटाकर अभेद भाव का उत्पादन और संरक्षण करती हैं। इसी प्रकार क्रमशः विकल्पों का हास हो जाता है, शिवत्व बिखर पड़ता है, एवं अविकल्प भूमि का उदय हो जाता है। उस समय चिदानन्दावेशमयी शुद्ध विकल्पशक्तियों का उत्थान होने पर शिवरूपी आत्मा समग्र जगत् को अपनी विभूति समझने लगती है और स्वयं विश्वात्मक रूप धारण करती है। तब विकल्पों का प्रसार रहने पर भी आत्मा का शिवभाव किसी अंश में लुप्त नहीं होता।

कविराज जी को इस दर्शन में एक बड़ी मौलिक समस्या लगती है। वह है क्रम की समस्या। मुक्ति में या आत्म बोध में, विशेषकर विमर्श की शक्तिरूपता स्वीकार करने के कारण, क्रम की स्थिति है या नहीं। कविराज जी ने इस प्रश्न को विविध अवसरों पर उठाया है और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। भारतीय दर्शन में पतञ्जलि, क्षणिकवादी बौद्ध और स्फोटवादियों के यहां इसकी चर्चा विशेषकर उठी है। काश्मीर शिवाद्वयवाद के क्रम सम्प्रदाय में क्षेमराज ने नित्योदित समाधि की प्राप्ति के उपाय के रूप में क्रम मुद्रा की चर्चा की है। क्रममुद्रा की विशेषता यह है कि इसमें पहले बाहर से भीतर प्रवेश करना पड़ता है, तदनन्तर आवेश सम्पन्न होने पर भीतर से बाहर प्रवेश किया जाता है। इसमें उसी प्रक्रिया से भीतर और बाहर बराबर हो जाता है अर्थात् एक ही समय में पूर्णाहन्ता के साथ-साथ विषय का भी ग्रहण होता है। यह क्रममुद्रा वास्तव में चिति मुद्रा है जो सृष्टि-स्थिति-संहार रूप संवित् चक्र अर्थात् क्रम को अधिष्ठित करती हुई आत्मसात् कर लेती है। पराशक्ति की स्फुरता के साक्षात्कार से ही इस प्रकार का समावेश हो सकता है। यह परमयोगावस्था का निदर्शन है। पारिभाषिक शब्दावली में इसे महेश्वरानन्द ने क्रम-परामर्श कहा है। यह क्रम-परामर्श ही पूर्वोक्त स्वात्म-विमर्श या जीवन्मुक्ति है।

स्पष्ट कहा जाए तो परावस्था में शक्तियों के मध्य किसी प्रकार का क्रम नहीं रहता, परन्तु विभक्त अवस्था में क्रम रहता है। शक्तियों की विभिन्न प्रकार की धाराएँ हैं। किसी-किसी का मत है कि परावस्था में भी अतिसूक्ष्म क्रम है, क्योंकि जिस अवस्था को शक्ति कहा जा रहा है, उसको स्पन्दरूप मानने पर क्रम भी मानना पड़ता है। परन्तु शिव स्थिति में क्रम का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।

बात यह है कि पारमार्थिक सत्ता साम्यावस्था स्वरूप है। जिस समय यह साम्य भंग होता है अर्थात् विश्व का प्रादुर्भाव होता है उस समय शक्ति ही स्पन्दित होती है और शिवांश

साक्षीभाव में स्थित रहता है। साक्षी अपरिणामी एवं एक है, किन्तु शक्ति भिन्न-भिन्न स्तर पर प्रसृत होती है। साक्षी केन्द्रस्थ है, वैसे ही मूल शक्ति भी अर्थात् दोनों ही एकभावापन्न हैं किन्तु शक्ति की प्रसार एवं संकोच, दो अवस्थाएं होती हैं, जब कि साक्षी की वे दो अवस्थाएं नहीं होती। शक्ति का प्रसार ही सृष्टि तथा उसका संकोच ही संहार कहा जाता है। प्रसार और संकोच, इन दोनों के प्रारम्भ तथा अंत में साम्यावस्था रहती है। मध्य में इसका वैषम्या या कालचक्र का आवर्तन होता है। सृष्टि और संहार—अर्थात् प्रसार और संकोच शक्ति का अनपायी स्वभाव है। इसे ही स्पन्द का बहिरुन्मेष और अंतर्निमेष कहते हैं। प्रसार शक्ति के क्षीण होने पर संकोच शक्ति पुष्ट होती है। ये दोनों शक्तियां क्रम से एक के अनन्तर दूसरी प्रकट होती हुई कालचक्र के नाम से पुकारी जाती हैं जिसमें समग्र विश्व घूम रहा है।

क्रम काल का धर्म है। क्षण एक और अखण्ड है। स्पन्दनवशात् उसमें क्रम प्रतीत होता है। वह प्रतीयमान क्रम कालरूप से आत्मप्रकाश करता है। काल वस्तुतः बौद्ध पदार्थ है—क्षणों की समष्टि। जब तक कालातिक्रमण नहीं होगा, तब तक क्षण का सन्धान असम्भव है। यह क्षण ही समस्त विश्व को प्रकाशित कर रहा है। योगभाष्यकार कहते हैं “एक एव क्षणः तस्मिन् एकस्मिन्नेव क्षणे सर्वं जगत् परिमाणम् अनुभवति” क्रम समाप्त न होने तक क्षण प्राप्ति असम्भव है। विश्व में दो विपरीत शक्तियां कार्य कर रही हैं—एक है भगवत् शक्ति या अनुग्रह शक्ति, दूसरी है काल-शक्ति या तिरोधान शक्ति। पूर्ण परम तत्त्व में ये दोनों समरस भाव से स्वातन्त्र्य की संज्ञा से कार्य करती हैं। परमेश्वर के आत्म संकोचन के साथ ही शक्ति की ये दोनों धाराएं पृथक् हो जाती हैं। काल शक्ति पशुभाव की पुष्टि करती है और अनुग्रह शक्ति आत्मा को परम स्वरूप में फिर से प्रतिष्ठित करती है। जो शक्ति क्रमशः काल को स्वाधिकार (अर्थात् कलनात्मकता) से अपसारित करती है उसी का नाम है काल-संकर्षणी शक्ति। जब क्षण स्थायी रूप से प्रतिष्ठित होता है, वह क्रमहीन काल का क्षण है। वह कालसंकर्षणी अवस्था है। यही अखण्ड स्वप्रकाशमय पूर्ण आत्म तत्त्व है अर्थात् महाज्ञान के उदय होने पर, आत्मबोध में क्रम नहीं रहता। कहना नहीं होगा कि योग की मूल धारणा का यह काश्मीर के क्रम दर्शन की शब्दावली में कविराज जी कृत अनुस्मृति और विस्तार है।

मूल्यांकन और संभावनाएँ

उपर्युक्त विवेचन में चेष्टा की गयी है कि काश्मीर शिवाद्वयवाद को लेकर कविराज जी के दार्शनिक प्रतिपादन को एकत्र कर लिया जाए। संभव है कि चयन की प्रक्रिया में कुछ

ऐसे अंश छूट गए हों जो दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हों और उनकी दार्शनिक अन्वर्थता को मैं न ग्रहण कर सका होऊँ। पर पूरे विवेचन में एक बात उभर कर आती है कि उनकी दृष्टि मूलतः आलोचनात्मक नहीं रही है। यह बात मैं किसी अवज्ञा से नहीं अपितु आदर भाव से कह रहा हूँ। वे या तो श्रद्धालु जिज्ञासु के भाव से एक समस्या को समझने की चेष्टा करते हैं अथवा समर्थ गुरु के भाव से समझाते हैं। दूसरे उनके लिए दर्शन की प्रक्रिया साक्षात् अनुभूति की प्रक्रिया है। अतः सारा विवेचन साधना-प्रक्रिया का आनुवंशिक या पूरक बन कर हुआ है। यह भी बात ध्यान देने की है कि उनका चिन्तन तो पूरा संगत और अन्वित है पर उसकी अभिव्यक्ति टुकड़ों में हुई है। अतः तत्तत् विचारों के पल्लवन में अकसर अन्तराल आ गए हैं या कुछ कड़ियाँ जुड़ने से रह गयी हैं। इन सब बातों का पुंजीभूत परिणाम यह हुआ है कि उनकी पद्धति उस अर्थ में आलोचनात्मक नहीं हो पायी है जिस अर्थ में हम किसी दार्शनिक प्रतिपादन से सामान्यतः आशा करते हैं। परन्तु एक अर्थ में उनका विवेचन बड़ा ही यौक्तिक है। वे जानते हैं कि वह क्या कहने जा रहे हैं अतः किसी दुरूह या व्याख्यासह विचार को वह सदृश प्रत्ययों के संदर्भ में समझाते हैं, आवश्यक होता है तो उस विचार के ऐतिहासिक विकासक्रम के संदर्पण से अपनी बात को स्पष्ट करते हैं, उसमें अंतर्निहित संभावनाओं की ओर भी ध्यान दिलाते हैं और इस सारे व्यायाम में उनकी आंतरिक यौक्तिक अन्विति बनी रहती है - तर्क में आंतरिक विरोध नहीं होता। भविष्य के गवेषकों से हमारा निवेदन होगा कि जो हम विवेचन कर चुके हैं उसके आलोक में वे कुछ उन कड़ियों की ओर ध्यान दिलाएं जो संभवतः छूट गई हैं ? और कुछ उन संभावनाओं की ओर जिन पर विद्वानों का ध्यान जाना चाहिए।



शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकंठ गुर्दू

गलेपादिका - सर्वसाधारण भाषिक व्यवहार में यह शब्द किसी व्यक्ति को, गले से पकड़ कर, आगे पीछे या और किसी तरफ बलपूर्वक धकेलने के अभिप्राय को अभिव्यक्त करता है। परन्तु शिवस्तोत्रावली के रचेता एवं ख्यातनामा भगवान उत्पल-देव ने अपने एक पद्य में इस शब्द को बहुत ही अनूठे ढंग से पारिभाषिक रूप में प्रयुक्त करके इससे 'हठ-शक्तिपात' का अभिप्राय निकाला है। पद्य इस प्रकार है :

त्वत्पादपद्मसंपर्कमात्रसम्भोगसङ्गिनम्।

गलेपादिकया नाथ मां स्ववेश्म प्रवेशय॥

आचार्य जी की इस मधुरतम सूक्ति का अर्थ तो सारे भक्तजनों को विदित ही है।

स्थित-प्रज्ञ - भारतीय दार्शनिक क्षेत्र में यह एक सर्वसाधारण एवं सर्वसम्मत दार्शनिक शब्द के रूप में प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होता आया है। यह शब्द किसी साधक की उस उच्चकोटि की आत्मिकस्थिति को द्योतित करता है जिसमें उसकी अवदानमयी प्रज्ञा (प्रतिभा) अखंड आत्मविमर्श पर ऐसी रूढ़ बनी होती है। ऐसी स्थित-प्रज्ञता के दिव्यप्रभाव से साधक के आध्यात्मिक अभ्युत्थान का मार्ग आगे-आगे स्वयं ही प्रशस्त बनता जाता है। इस संदर्भ में योगसूत्र का मन्तव्य भी इस प्रकार है। 'योग एव योगस्य उपायः, ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा', इत्यादि।

ज्ञप्तिः - 'सिद्ध गुरुजनों के अलक्षित कृपा कटाक्ष, निरन्तर एवं श्रद्धापूर्वक शास्त्रों का अनुशीलन, एवं निजी सत्-तर्कमय विमर्श'- इन तीन प्रकार के उपायों से अभ्यास करते रहने से अंतस् में जिस प्रकार के ज्ञानमय आलोक का उन्मेष हो जाता है, उसको ज्ञप्तिः कहते हैं।

गाढग्रह - किसी भी मनोनीत विषय या मन्तव्य के प्रति आवश्यकता से अत्यधिक आत्मीयता प्रदर्शन के हठीले स्वभाव को गाढग्रह कहते हैं।

अव्याप्ति- यह एक प्रकार का लक्षणदोष है। किसी भी पदार्थ के लिए निर्धारित लक्षण अगर उस पदार्थ पर लागू ही नहीं हो सकता हो तो उसको अव्याप्ति लक्षण दोष माना जाता है। उदाहरण - अगर गाय का लक्षण यह बताया जाए कि जिसका पैर बीच में फटा हुआ न हो गाय कहलाती है। यह लक्षण स्वतः गाय पर ही लागू नहीं होता है क्योंकि गाय का खुर बीच में फटा होता है।

अतिव्याप्ति - यह भी एक प्रकार का लक्षण दोष है। यदि किसी पदार्थ का लक्षण उस पदार्थ के अतिरिक्त और किसी दूसरे पदार्थ पर भी लागू होकर दोनों पदार्थों में पारस्परिक संकट उत्पन्न करता हो-तो अतिव्याप्ति नामक लक्षण दोष कहलाता है। उदाहरणार्थ-यदि यह कहा जाए कि जिसके चार खुर हों वही गाय होती है। यह लक्षण गाय के अतिरिक्त अन्य बकरी इत्यादि पशुओं पर भी लागू होने के कारण संकट उत्पन्न कर देता है अतः अतिव्याप्ति नामक लक्षण दोष है। स्मरण रहे कोई भी लक्षण दूषित नहीं होना चाहिए।

ब्रह्मबिल - योगप्रक्रिया में ब्रह्मरन्ध्र को ब्रह्मबिल कहा जाता है। 'करन्ध्र' यह शब्द भी इसी का समानार्थक है।

अभिसन्धि - सिद्ध योगीजन की प्रतीघातरहित अथवा सर्वस्वतन्त्र इच्छाशक्ति (दूसरे शब्दों में योगिसंकल्प) को अभिसन्धि कहते हैं।

अवदान - पराभक्ति की अवस्था पर पहुंचे हुए भक्तजन की लक्ष्यबद्ध मानसिक एकाग्रता का बोध अवदान शब्द से होता है।

समवाय - दो या दो से अधिक पदार्थों का आपस में नित्य बना रहने वाला संबन्ध समवाय-संबन्ध कहलाता है। उदाहरणार्थ- कपड़ा और धागे इनमें समवाय-संबन्ध हैं।

समवायी - जिन पदार्थों का आपस में समवाय-संबन्ध हो उनको समवायी कहते हैं।

समावेश - साधक की निजी सर्वसाधारण स्तर की चेतना में, किसी अलक्षित अनुग्रह के बल से, ईश्वरीय चेतना का संक्रमण हो जाने को समावेश कहा जाता है।

देव - शैव प्रक्रिया में इन्द्रिय शक्तियों को देव भी कहते हैं क्योंकि क्रीडार्थक दिव् धातु से ही 'देव' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। सारी इन्द्रियशक्तियां प्रतिसमय अपनी-अपनी निश्चित क्रीडा अर्थात् क्रियात्मकता को संपन्न करती रहती हैं। अतः उनको देव भी कहते हैं।

जडभूत - जडभूत ऐसे प्रमेय-पदार्थों को कहते हैं जिनमें ज्ञान-क्रिया का स्पन्दन न हो। ऐसे पदार्थ निजी सद्भाव को भी सिद्ध करने के हेतु अजडभूतों पर निर्भर रहते हैं। अजडभूत वही होते हैं जिनमें प्रतिसमय ज्ञानक्रिया के स्पन्दरूपी चैतन्य अर्थात् आत्मा की वर्तमानता हो। इनमें वर्तमान ज्ञान क्रिया के स्वाभाविक अथवा स्वारसिक स्पंदन को ही

जीवन कहते हैं।

उद्गीथ- 'उच्चैः गीयत इति उद्गीथः'- अर्थात् जिसका गान विशिष्ट रूप में किया जाता है। उद्गीथ प्रणव का नामान्तर है। प्रणव का अर्थ भी-'प्रकर्षेण नूयत इति प्रणवः'-अर्थात् अति उत्कृष्ट रूप में जिसकी स्तुति की जाए, है।

आरोह- निजी विमर्श में पृथिवी-तत्त्व से आरम्भ करके, पृथ्वी को जल में, फिर दोनों का तेज में इत्यादि क्रम के अनुसार कारणतत्त्वों में लयीभाव करते-करते पर्यन्ततः सारे विश्व को ही शिवभाव में लय करने के क्रम को आरोह कहते हैं।

अवरोह- ठीक इसी प्रकार निजी विमर्श में शिव से आरम्भ करके, शिव से शक्ति में शक्ति से सदाशिव, सदाशिव से ईश्वर इत्यादि क्रम के अनुसार ३६ तत्त्वों का उत्तरोत्तर विकास करके पृथिवी-तत्त्व पर पहुंच जाने के क्रम को अवरोह कहते हैं।



MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs. 80.00

Price Per Copy : Rs. 20.00

Overseas Subscription : US\$25.00

*All correspondence & subscription
must be sent to the Administrative Office :*

2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.

*Information regarding printing & publishing etc.
can be had from*

ISHWAR ASHRAM TRUST
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044.
Phone- 6943307

Message



ASHOK MATTU

Tel. No. 3710445

Fax No. 3715590

निजी सचिव

संचार मंत्री

भारत

PRIVATE SECRETARY
MINISTER FOR COMMUNICATIONS
INDIA

NEW DELHI-110001

4th May, 1999

Dear Shri Raina,

Thank you very much for your kind invitation on the auspicious occasion of foundation stone laying ceremony of Ishwar Ashram Trust at Sarita Vihar on 7th May 1999.

It is indeed a matter of good fortune to get associated in any manner with this pious and noble venture particularly at a time when the Kashmiri Pandit Community, a repository of the philosophy of Shaivism and of which His Holiness Ishwar Svarup Swami Lakshman Joo Maharaj ji of Nishat, Kashmir was a leading light, needs it the most as it is faced with the worst ever crisis threatening its very survival including survival of its religious philosophy & practices, culture, values etc. I am sure that the proposed trust would fill in the void/incertitude resulting from the above crisis and help in preserving, promoting and propagating the rich religious philosophy and cultural heritage which our community has been known for.

Wishing you and others involved all success.

Sincerely yours,

(ASHOK MATTU)

Shri I. K. Raina,
Secretary/Trustee,
F-115, Sarita Vihar,
New Delhi-110044



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office:

Ishber Nishat
Srinagar (Kashmir)
Pin 190021

Administrative Office :

2. Mohinder Nagar,
Canal Road
Jammu (Tawi)
Pin 180002
Tel. - 555755

Branch Office :

115/ F, Sarita Vihar,
New Delhi
Pin - 110044
Tel. : 6943307

Place : Jammu

Dated : 13.6.99

Resolution.

The Disciples/devotees of Shri Ishwar Swaroop Swami Lakhsman Joo Maharaj met today in the Ashram premises to condole the sad demise of Pt. Janki Nath Ji Kaul at Bangalore a few days ago. Shri Kaul was the elder brother of our revered Trustee.. Shri B. N. Kaul. Late Shri Kaul originally resident of Kenimohalla, Rainawari, Srinagar, Kashmir was a very senior disciple of Swami Ji Maharaj. He remained associated with the Ashram for a number of decades.

It was resolved that heartfelt condolences of the Disciples/devotees be conveyed to Mrs J.N. Kaul and his family members and Shri B.N.Kaul. We pray that the bereaved family may have courage to bear the loss and pray to Swami Ji Maharaj to bless the departed Soul.

Similar condolence meetings were held at Srinagar Ashram and at Delhi Ashram.

For Ishwar Ashram Trust.

Sd/

I. K. RAINA

Secretary.



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office:
Ishber Nishat
Srinagar (Kashmir)
Pin 190021

Administrative Office :
2. Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi)
Pin 180002
Tel - 555755

Branch Office :
115/ F, Sarita Vihar,
New Delhi
Pin - 110044
Tel - 6943307

Place : Jammu

Dated : 6.6.99

The General Body of the Ishwar Ashram met today the 6th of June, 1999 in the Ashram premises to condole the untimely and shocking demise of Smt. Preeti Saproo/Kaul esteemed daughter of Shrimati Somawati and Shri Somnath Saproo. All the devotees/disciples of Swami Ji Maharaj recalled their association with this young lady and felt extremely sorry for the ill-luck fallen on the family.

It was resolved that these heartfelt sentiments be conveyed to Saproo family with the prayer that Swami Ji Maharaj may liberate the departed soul from the pangs of repeated births and deaths.

Similar condolence meetings were held at Srinagar Ashram and at Delhi Ashram.

For Ishwar Ashram Trust.

Sd/

B.N. KAUL

Trustee.